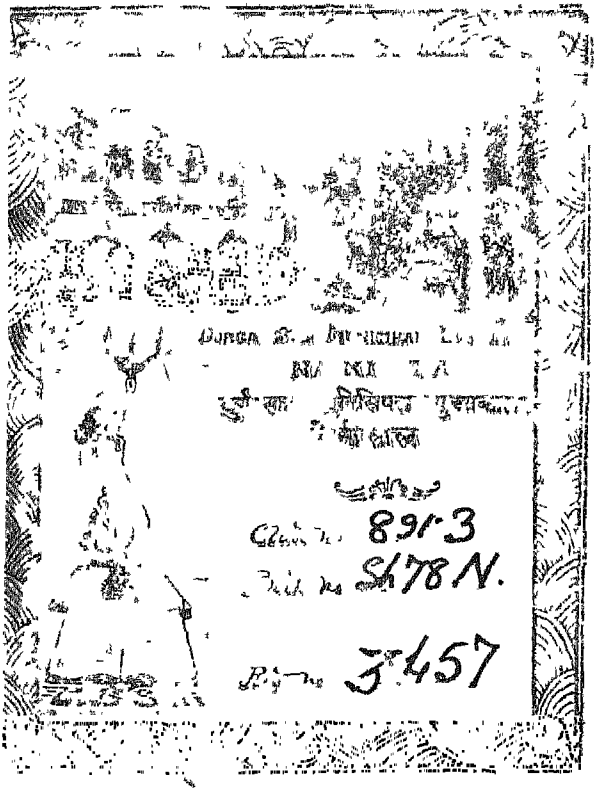

Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल

Class No. 891.3
Book No. Sh78N.
Reg. No. 3457

नींव की मिट्टी

[उपन्यास]

लेखक

शिवसागर मिश्र

राजपाल एण्ड सन्ज़

कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज
काश्मीरी गेट, दिल्ली

मूल्य : तीन रुपया

मुद्रक
हकूमतलाल
विश्व भारती प्रेस
पहाड़गंज, नई दिल्ली

बहुजन हिताय—बहुजन सुखाय

को

अन्धकार-पूर्ण राह पर तिल-तिल कर

जलने वाले

प्रियवर खादिमहुसैन रिज़वी को

सादर !

नींव की मिट्टी

: १ :

चोर ! चोर !! पकड़ो ··· ··· चोर !!! ··· ··· ···

रात का सन्नाटा अचानक ही टूट गया और लोगों की भाग-दौड़ से गाँव की निस्तब्धता यों भंग हो गई जैसे चिड़ियों से लदे पेड़ पर बिल्ली चढ़ गई हो। इक्के-दुक्के टार्च की फीकी रोशनी झाड़ी-झुरमुट और कच्ची सड़क तथा पेड पर चमक-दमक करने लगी। सारा गाँव जाग पड़ा। "कौन है रे ···" "कहाँ है चोर" ··· ··· "टार्च लाना रे"-जैसी तरह-तरह की अनुकूल पुकारों से गाँव का ओर-छोर गूँज उठा। औरतें अपने-अपने घर की दुमुहानी पर इकट्ठी हो गईं। छोटे-छोटे बच्चे चिल्ल-पों मचाने लगे। लेकिन चोर का कहीं भी पता नही था।

डाक्टर हसन भी जग पड़े। वह गाँव से पूरी तरह परिचित थे कि पत्तो की खड़खड़ाहट और हवा की सनसनाहट से भी गाँव वाले चौंक उठते हैं—और "कौन है" ··· की आवाज "कौन है रे" ··· "किधर है रे" "चोर है रे" मे बदल जाती है और काफी शोर-गुल तथा छान-बीन के बाद हाथ कुछ नहीं आता। तब सवेरा होने पर तरह-तरह की कहानियाँ निकल पड़ती हैं; जैसे ···और इसीलिए डाक्टर हसन अपने बिस्तर पर ही लेटे रहे—उठकर बाहर नही आये। गाँव का शोर-गुल जारी ही था कि उनके दरवाजे पर हल्की किन्तु लगातार थपथपाहट होने लगी। डाक्टर साहब को लगा, किसी मरीज की तबियत बहुत खराब होगी सो बेचारा वाहक घबराया हुआ है। डाक्टर साहब उठे। बाहर काफी ठण्ड थी। उन्होंने देह पर शाल रखी, चश्मा पहना, लालटेन की रोशनी तेज़ की, और फिर जाकर दरवाजा

खोल दिया। दरवाजा खोलते ही वह विस्मित-से रह गए।

"आप ?"

"जी !" दरवाजे पर खड़ी किशोरी ने घबराई हुई आवाज में कहा। उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह घर में पैर रखे।

"क्यों—खैरियत तो है ?"

"लोग मेरा पीछा कर रहे हैं ··· लोगों ने ··· समझा कि ··· कि ··· कि मैं चोर हूँ ···" उसकी साँस फूल रही थी—जिस वजह से वह साफ-साफ बोल नहीं पा रही थी। डाक्टर साहब क्षण-भर उस किशोरी को देखते रहे और फिर—"भीतर आ जाइए !" कहकर किनारे हो गए। किशोरी के भीतर आ जाने पर उन्होंने दरवाजा बन्द कर दिया। किशोरी सकुचाती-सहमती-सी बीच कमरे में रखी एक आराम-कुर्सी के पास खड़ी हो गई। बाहर शोर-गुल अभी तक जारी था।

"बैठ जाइ, !" डा० हसन अपने बिस्तर पर बैठे मुस्करा रहे थे। किशोरी सिर झुकाए बैठ गई।

"हाँ, तो अब बताइए कि माजरा क्या है ?"

"··· ··· "

"जोगी जी कहाँ हैं ?" किशोरी को चुप देखकर डाक्टर साहब ने नीतिपूर्वक पूछा। 'जोगी' जी गाँव का लाइब्रेरियन और कर्मठ समाज-सेवी युवक था। उसका नाम था योगेन्द्र; लेकिन उसकी लगन, ईमानदारी, रूखापन और बे-मेल प्रवृत्ति को देखकर गाँव वालों ने उसे जोगी कहना शुरू कर दिया था।

"वह मुझे आपके घर तक किसी कदर पहुँचाकर स्वयं लाइब्रेरी चले गए।"

"अच्छा तो ये आप लोग ही थे जिनके चलते गाँव-भर में 'चोर-चोर' की आग लग गई।" डाक्टर हसन के चेहरे पर स्निग्ध मुस-कराहट खेल रही थी।

"क्या बताएँ डाक्टर साहब, आज नींद न आने की वजह से

मैं यों ही अपने बरामदे में टहल रही थी कि 'जोगी' जी उधर से गुजरे। वह बारह बजे वाली गाड़ी से मुजफ्फरपुर से लौट रहे थे। मुझे भी क्या सनक सवार हो गई कि मैं उनके साथ बात-चीत करती हुई कुछ दूर निकल आई। निरसू काका का घर देखकर मुझे होश आया और मैं लौटने को ही थी कि निरसू काका ने पूछ दिया—'कौन है ?' और हम दोनों पकड़े जाने के भय से घबराकर भाग खड़े हुए। फिर जो-कुछ हुआ वह तो ···"

"मैं सुन ही रहा हूँ और देख भी रहा हूँ। लेकिन डाक-बाबू कहाँ हैं ?"

"जी ? बाबूजी ? ··· वह तो सो रहे हैं।" किशोरी ने आश्वस्त होकर कहा।

"क्यों—आज उन्होंने कुछ ज्यादा पी ली है क्या ?"

किशोरी ने हँसकर 'हाँ' कर दिया।

गाँव का शोर-गुल दबा नहीं था, बल्कि और तेज हो रहा था। डाक्टर हसन शोर-गुल सुनते रहने की मुद्रा में क्षण-भर खामोश रहे और बोले—"पता नहीं, ये गाँव वाले इतने कायर क्यों हैं ?"

"लेकिन अभी तो अपनी बहादुरी प्रदर्शित कर रहे हैं—अँधेरी रात, ठण्डी हवा के झोंके, अरहर के खेतों से आती हुई भूत-पिशाच की भयंकर नीरवता और ऐसे भयावह वातावरण में एक चोर की साहसपूर्ण तलाश !" ·····बोलती-बोलती किशोरी हँस पड़ी। डाक्टर साहब भी हँसने लगे कि अचानक तीन-चार व्यक्तियों की बात-चीत की आवाज सुनाई पड़ी और फिर दरवाजे पर थपकी।

"कौन है ?' डाक्टर हसन ने गम्भीर आवाज में पूछा।

"डाक्टर साहब !" दो आवाजें एक साथ गूँज उठीं—"जरा दरवाजा खोलिए !"—कोई आदमी बोला। यह रामबाबू की आवाज थी—डाक्टर साहब आवाज से ही पहचान गए। किशोरी घबराकर उठने लगी। भय से उसका चेहरा स्याह पड़ गया।

"बैठिए आप !" डाक्टर हसन की आवाज में सहानुभूति और आत्म-विश्वास था, चेहरे पर सौम्यता और उनके होठों पर वही स्निग्ध मुस्कुराहट ! दरवाजा खोलते ही डाक्टर साहब का अनुमान सही निकला। हाथ में लालटेन लिये चार-पाँच आदमियों के साथ रामबाबू खड़े थे।

"इधर से किसी के भागने की आपको भनक···" पूरी बात रामबाबू कह भी नहीं पाए थे कि किशोरी पर उनकी नजर जा पड़ी। वह बिना पूछे-ताछे अधिकार पूर्वक कमरे में दाखिल हो गए। उस समय उनके चेहरे पर कृत्रिम विश्वास, अनावश्यक बुजुर्गी और मुगालते के भाव स्पष्ट थे। कमरे में चारों तरफ दृष्टि दौड़ाकर वह किशोरी के पास ही एक कुर्सी पर ऐसे बैठ गए—जैसे उनके लिए किशोरी का कोई अस्तित्व ही नहीं हो—जैसे किशोरी को वह पहचानते भी न हों। किशोरी ने सहमते हुए उन्हें नमस्कार किया। लेकिन रामबाबू डाक्टर साहब की ओर मुखातिब हुए, जो तब तक अपने बिस्तरे के पास पड़ी मेज पर से सिगरेट उठाकर पीने की तैयारी कर रहे थे। रामबाबू के साथ वाले लोग भी कोठरी में चुपचाप खड़े थे—कौतूहल में, व्यंग-मुद्रा में, शरारत में डूबे हुए।

"कहिए रामबाबू, आपकी क्या सेवा की जाय।" डाक्टर हसन ने बिस्तर पर बैठते हुए पूछा। रामबाबू ने जरूरत से ज्यादा गंभीर मुद्रा बनाते हुए मेज पर से सिगरेट का डिब्बा उठा लिया और उसमें से सिगरेट निकालने लगे।

"ओह माफ कीजिएगा, मैं तो भूल ही गया था कि आप भी सिगरेट पीते हैं।" डाक्टर साहब ने विनम्रता से कहा और माचिस उठाकर तपाक से राम बाबू का सिगरेट सुलगाने लगे।

सिगरेट का एक लम्बा कश खींचते हुए रामबाबू बोले—"कभी-कभी पी लेता हूँ—कभी-कभी—आदत नहीं है। बस जब मौका मिला" ··· ··· और उनकी नजर किशोरी पर अटक गई।

"आप तो इन्हें पहचानते ही होंगे—अपने डाक-बाबू की लड़की है—अचला !"

"ओSSS अचला !" रामबाबू प्रत्येक अक्षर पर जोर देते हुए बोल उठे। अचला सिर झुकाये दीनता की प्रतिमूर्ति-सी बैठी रही। वह अपने को एक चेतन कबूतर महसूस कर रही थी और उसे लग रहा था कि उसके चारों ओर भाले-बरछी लिये बहुत-से शिकारी घात में खड़े हैं।

"डाक-बाबू बीमार है क्या ?" रामबाबू सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए बोले।

"जी वह·····बात यह है कि·····"

"उन्हें बिलियरी कॉलिक हो गया है !"—डाक्टर हसन ने बात पूरी कर दी।

"यह बिलियरी कॉलिक क्या होता है ?"

"पित्ते में दर्द,·····जो समझ लीजिए कि तेज चीज पीने-खाने से हो जाता है !"

"ओ···तो यह दवा लेने आई है। अच्छा SSS ! लेकिन इतनी रात को·····अकेली इतनी दूर डाक्टर के यहाँ आना·····क्या कोई नौकर-वौकर नहीं था ?"

"डाक्टर साहब के यहाँ आने में क्या डर ? चली आई।"—अचला ने साहस बटोरकर सरोष उत्तर दिया।

"अरे, नराज हो गई। तू तो मेरी बेटी-जैसी है।"—रामबाबू खड़े हो गए।—"चलेगी, घर तक छोड़ आऊँगा।"

"जी, धन्यवाद। मैं दवा लेकर जाऊँगी। आप जाइए !" अचला के उत्तर में ऊब झलक रही थी।

रामबाबू सिगरेट झाड़ते हुए दरवाजे की ओर मुड़े—"अच्छी बात है डाक्टर साहब; मैं चलता हूँ।"

"चलो भाइयो ! अब तो चोर भी हाथ से निकल गया।" और सब-के-सब बड़े निराश भाव से थके पाँव कमरे के बाहर हो गए।

डाक्टर हसन उन लोगों को अधर्कार में विलीन होते देखते रहे—केवल लालटेन की रोशनी दीखती रही—जो धीरे-धीरे छोटी होती गई··· छोटी होती गई···छोटी बहुत छोटी·····और फिर दरवाजे तक अन्धकार—गहन अन्धकार जम गया।

: २ :

अभी सूर्योदय भी नहीं हुआ था कि डाक्टर हसन को निरसू ठाकुर के घर मरीज देखने गाँव के भीतर जाना पड़ा। वहाँ से लौटते समय सूरज निकल रहा था। बंथान में बँधे गाय, बैल और भैंस को लोग सानी-पानी दे रहे थे। धुएँ और कुहासे से दूर-पास के झुरमुट-पेड़, खेत-खलिहान, बाग-बगीचे साफ-साफ नजर नहीं आ रहे थे। कुए पर पानी भरने वालियों की भीड़ लग रही थी—हर कुए पर कोई-न-कोई ज़ोर-ज़ोर से खाँस-खाँसकर कुल्ला-आचमन कर रहा था। डाक्टर हसन जल्दी-जल्दी पाँव रखते हुए लौट रहे थे। जो भी उनके सामने पड़ जाता अभिवादन करता और सबोंको डाक्टर हसन दोनों हाथ जोड़कर जवाब दे देते और आगे बढ़ जाते। डाक्टर साहब ने महसूस किया कि लोग उनकी ओर आज कुछ अजीब दृष्टि से देख रहे हैं—कुए पर पानी भरती हुई नौकरानियाँ और गृहस्थिनें उन्हें देखकर आज अजीब ढंग की मुद्रा बना रही हैं—बाँयें हाथ में कुए में गिरी डोल की रस्सी पकड़े दायें हाथ की उँगलियों से ठुड्ढी पकड़े वह इस तरह देखती है जैसे उन्होंने आज पहली बार डाक्टर की सूरत देखी हो। डाक्टर हसन इन सभी बातों को अनदेखी-सी करते हुए चले आ रहे थे। उनके चेहरे पर वही स्वाभाविक स्निग्ध मुस्कुराहट खेल रही थी। उनके दिल में यह सब बातें पल-भर के लिए क्षोभ उत्पन्न कर

देतीं, लेकिन उनके आत्म-विश्वास और अनुभव-जनित उदारता से टकराकर वह क्षणिक क्रोध कुण्ठित हो जाता।

डाक्टर हसन अपने भीतर उठते हुए क्षणिक द्वन्द्व का आनन्द लेते हुए चले जा रहे थे कि अचानक रग्घूबाबू का सुपरिचित गँवारू सम्बोधन सुनाई पड़ा—

"ऐ डाक्टर!" डाक्टर हसन रुक गए। रग्घूबाबू गाँव-भर में सम्मानित वृद्ध व्यक्ति थे। मन-ही-मन सभी उनका निरादर करते थे, लेकिन सामने किसी की भी हिम्मत नहीं होती थी कि उनकी बात काट दे। पूरी 'रामायण' और 'कबीर के पद' उनकी जबान पर थे और उनका दावा था कि संसार का कोई भी पंडित शास्त्रार्थ में उनसे नहीं जीत सकता। गाँव के जवान उनके परोक्ष में उनकी नकल उतारते, लेकिन सामने आने पर उनकी बातों का जवाब केवल 'जी-जी' कहकर देते। रामबाबू उनके बड़े सुपुत्र थे और छोटे सुपुत्र का नाम था योगेन्द्र; जिसे सब लोग 'जोगी' कहकर पुकारते थे।

"कहाँ से आ रहे हो इतने सवेरे?"

"नमस्कार रग्घूबाबू! जरा निरसू ठाकुर की घर वाली को देखने गया था।" डाक्टर साहब ने विनम्रता से उत्तर दिया।

रग्घूबाबू ने निरीक्षणात्मक दृष्टि से डाक्टर हसन को देखते हुए कहा—"अरे वह ससुरी अब मरगी। मैंने तो कल ही कह दिया था कि गोदान-वोदान करवा दो। मगर निरसू की अक्ल मारी गई है। जब वह ससुरी नरक में जायगी और भूत बनकर दुख देगी तब पता चलेगा कि रग्घूबाबू क्या हैं? इलाज से कुछ नहीं होगा। क्यों डाक्टर? तुम भगवान् से बढ़कर तो हो नहीं कि ब्रह्मा का लेख मिटा दोगे।"

"अमिट लेख को कौन मिटा सकता है रग्घूबाबू! लेकिन मैं तो सेवक हूँ—जहाँ कहीं मेरी सेवा की जरूरत होती है, चला जाता हूँ।" डाक्टर हसन ने मुक्ति पाने के विचार से बहस की गुञ्जाइश

खत्म करते हुए कहा।

"हाँ तुम्हे तो कहीं भी चैन नहीं। दिन क्या और रात क्या ''? अरे हाँ, रात वह...... डाक-बाबू की लड़की का अजीब किस्सा सुना।"

"क्या किस्सा सुना ?" डाक्टर साहब ने रस लेते हुए पूछा।

"सुना कि वह रात-भर तुम्हारे पीछे पड़ी रही।"

"ठीक ही सुना, लेकिन क्या कीजिएगा ! मैं तो हमेशा आगे देखता हूँ; इसलिए पीछे पडने वालों की मुझे कोई चिन्ता नही।" डाक्टर हसन ने सहज हास्य से कहा।

"अरे नही डाक्टर, वह तो मुझे मायाविनी-सी दीखती है। अजीब ढंग से पोशाक पहनती है—न तो सिर पर आँचल और न जुबान पर कोई रोक। निर्लज्ज है, निर्लज्ज ! छी: !" रघूबाबू ने एक लोंदा थूक वही बरामदे फेक दिया। डाक्टर साहब चलने को तैयार हुए तो रघू-बाबू ने रोकते हुए पूछा—"क्या वह रोज तुम्हारे यहाँ आती है ?"

"डाक्टर लोग बड़े पहुँचे हुए होते है बाबू !"

रामबाबू वहाँ पहुँचते ही बोल उठे। रामबाबू अभी-अभी सोकर उठे थे। डाक्टर हसन को उनकी बात अच्छी नही लगी, फिर भी वह मुस्कुराते रहे।

"अरे राम-राम, डाक्टर तो बिलकुल सीधा आदमी है। सब इसे ठग लेते है—डाक-बाबू की लड़की ने भी इसे ठग लिया। तुम शादी क्यों नहीं कर लेते डाक्टर ? जवानी ढल गई और अब तक कुँवारे बैठे हो !" रघू बाबू ने कृत्रिम अपनापन दिखाते हुए कहा।

डाक्टर हसन कुछ बोलना ही चाहते थे कि रामबाबू ने फिर चुटकी ली—"डाक्टर साहब को इलाज करने से फुरसत कहाँ मिलती है कि अपने कुँवारेपन की बात सोचें। है कि नहीं डाक्टर साहब ?

"जी हाँ, सबोंके पास कोई-न-कोई धन्धा तो है ही। कोई अपने काम मे व्यस्त है तो कोई उस काम को परखने में व्यस्त है।"

"अब तो मैं भी आपसे कुछ ट्रेनिंग लूँगा डाक्टर साहब; आज तक मैं अपने जीवन में असफल ही रहा। और आप हैं कि परदेसी होकर भी यहाँ वालों के दिल में मनमोहन बनकर बस गए।"

"ज्यादा जुबाँदराजी अच्छी नहीं होती रामबाबू!" डाक्टर हसन ने ऊबकर कहा। और वह चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट लिये वहाँ से जाने लगे कि रामबाबू बोल उठे—"हिन्दुओं की बहू-बेटियों पर डोरे डालना अच्छा नहीं है।"

डाक्टर हसन के पाँव रुक गए। उन्होंने अपनी आँखें रामबाबू की आँखों में गड़ा दीं। रामबाबू की आँखें हार मानकर दूसरी ओर घूम गईं।

रघूबाबू ने बात की गम्भीरता को उड़ाने के खयाल से कहा—"अरे क्या बक-बक करता है? वह ससुरी तो खुद ही डायन है। जब वही दौड़-दौड़कर इसके पास आती है तो बेचारा डाक्टर क्या करे?"

डा० हसन को रघूबाबू का मरहम जहर-सा लगा। वह अपने दर्द को पीते हुए धीमी किन्तु दृढ़ आवाज में बोले—

"आप लोग आदमी को नहीं देखते। आप लोगों को चारों ओर अपने-जैसा जानवर ही दिखलाई पड़ता है, क्योंकि आपकी आँखों में शैतान है।"

"चुप रहिए! उल्टा चोर कोत....." रामबाबू अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाए थे कि घर के बगल की गली से निरसू ठाकुर निकल आया। निरसू को देखते ही रामबाबू की जीभ सट गई। निरसू उस गाँव का ही नहीं—पूरे जबार का नामी पहलवान था। उसके डर से गाँव वाले तो क्या, पुलिस तक काँपती थी। उसके हुक्म पर जबार-भर के जवान जान देने को तैयार रहते थे। और निरसू था कि आदमियत का पल्ला पकड़कर जिन्दगी की राह तय कर रहा था—रास्ते में जहाँ कहीं भी उसकी प्यारी आदमियत को कोई चोट पहुँचाता तो उसकी आँखों में खून उतर आता॥

"कौन चोर है राम ?" निरसू ने बात की जड़ समझने के विचार से पूछा।

"ओ चोर···चो···ऽ···कौन निरसू चाचा, नमस्कार !"

"जीते रहो। पाँव लागीं रग्घूभाई। यह कैसी बातें हो रहा थीं ?"

"कुछ नहीं, रात कोई चोर गाँव में घुस आया था उसीकी बात चल रही थी। चलो ठीक वक्त पर आ गए। चलकर दवा ले लो !" डा० हसन ने बात वहीं खत्म कर दी और फिर दोनों चल पड़े।

रग्घूबाबू और रामबाबू—दोनों पिता-पुत्र लजाये-से वहीं खड़े रह गए—हाथ मलते हुए। लेकिन दोनों के मन का पाप उनके कलेजे में साँप की तरह डोलता - काँपता रहा।

: ३ :

डा० हसन जब तक अपने घर पहुँचे तब तक मरीजों की अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। डा० हसन सीधे अपने कमरे में चले गए। निरसू बाहर ही रुक गया। डा० हसन और निरसू दोनों ही पूरे इलाके में प्रसिद्ध और प्यारे थे। दोनों का क्षेत्र अलग-अलग था। और लोग दोनों की ही इज्जत करते। एक के लिए सहज स्नेह था तो दूसरे के लिए भय-मिश्रित सम्मान। दोनों ही समय पर काम आने वाले, दोनों ही उदार-चेता और दोनों ही शरणागत-वत्सल। लेकिन फर्क था—डा० हसन शिकार हो जाते और तड़पते भी नहीं, लेकिन निरसू शिकारी की गरदन दबोच देता और पूरे इलाके के लिए एक सबक छोड़ देता।

डा० हसन ने निरसू को भीतर बुलाया और कहा—"थोड़ी देर ठहरिय तो मैं जरा नहा-धो लूँ; क्योंकि दवाखाने जाकर फिर एक बजे से पहले फुर्सत नहीं मिलेगी।"

"जी हाँ, मेरी कोई गाड़ी थोड़े छूट रही है ?" निरसू ने तपाक से उत्तर दिया और बिना कोई और बात बढ़ाये बाहर निकल आया।

"डा० साहब कब तक बाहर आयेंगे ?" एक बूढ़े ने निरसू से पूछा।

"डा० साहब भी आदमी हैं—मशीन नहीं। चुपचाप बैठे रहो।" निरसू अपने स्वाभाविक रूखेपन से उत्तर देकर वहीं बेंच पर एक ओर बैठ गया।

सब-के-सब अजीब मुद्रा में बैठे थे। सब-के-सब आपस में बहस के ढंग पर कुछ बातें कर रहे थे और निरसू के आते ही सब-के-सब खामोश हो गए। निरसू ने बैठते-बैठते सबों पर एक सरसरी नजर डाली और तब उसने महसूस किया कि सबों के चेहरे पर एक अजीब भाव जमा हुआ है, जैसे कोई बहुत बड़ी घटना घट गई हो या जैसे कोई तूफान आने वाला हो। निरसू के स्वभाव को सभी जानते थे और सभी मानते थे कि निरसू सत्य का साथ देना जानता है। लेकिन निरसू के दिल में डा० के प्रति क्या भाव है यह बहुत कम लोग जानते थे।

"रात की बात जानते हो निरसू भइया ?" एक वृद्ध, जो दमे की बीमारी से साँस-पर-साँस लिये जा रहा था, बोला।

"नहीं तो !"

"अरे तुम्हें नहीं मालूम ? ···गाँव की एक बूढ़ी औरत ने अपनी ठुड्डी पर उँगली रखते हुए अपनी बात जारी रखी—"डाक-बाबू की लड़की कल रात-भर डा० साहब के यहाँ बैठी रही। हाँ ऽ ऽ ऽ।"

"तो ऽ ऽ ऽ ···?" निरसू ने कुछ शंका के भाव से पूछा।

"तो क्या···? गाँव-भर के लोग परेशान हैं कि आखिर डाक्टर साहब-जैसे देवता आदमी भी कैसे इस···।"

"चुप रहो !" निरसू गरज उठा—"बक-बक किये जा रही हैं। शर्म भी नहीं आती। जो डाक्टर दिन-रात सुपत ही इनकी जान बचाने की चिन्ता में बेहोश रहता है उसीकी निन्दा करते··· बदमाश कहीं

की।" निरसू की आँखों में खून उतर आया। सब लोग सहम गए। निरसू क्रोध में ऐंठता रहा और उठकर टहलने लगा।

डाक्टर हसन आये। सब लोग उठकर खड़े हो गए। सबों की नजर डाक्टर हसन के चेहरे पर जमी थी। लेकिन सबों ने देखा कि डा० हसन के चेहरे पर वही स्निग्ध मुस्कराहट खिल रही है, उनकी आँखों में वही आत्म-विश्वास की ज्योति जल रही है, उनके हाव-भाव में वही देवत्व के करिश्मे नजर आ रहे हैं और उनकी पूरी मूर्ति वैसी ही सौम्य जादूगर-सी लग रही है—पूर्ण रूप वैसा ही लग रहा है जैसा,—किसी मरते हुए बीमार के उनकी दवा से अच्छे हो जाने पर लोगों की कल्पना में डाक्टर साहब नजर आते हैं।

निरसू का क्रोध उतर गया। उसने विजयोल्लास की मूक ललकार के भाव से सबों की ओर देखा और कहीं से कोई विरोध की भंगिमा न पाकर वह अपनी जगह पर आ बैठा।

डाक्टर हसन मरीजों को दवा देने में व्यस्त हो गए। सबसे पहले उन्होंने निरसू को दवा देकर उसे विदा किया।

डाक्टर हसन एलोपैथी में एम० बी० बी० एस० थे, लेकिन वर्षों के अनुभव के बाद उन्हें यकीन हो गया था कि इलाज का सर्वश्रेष्ठ माध्यम होमियोपैथी ही है—खासकर भारत-जैसे गरीब देश में, जहाँ दवा तो क्या, कफन के लिए भी भीख माँगनी पड़ती है। डाक्टर के हाथ में यश था। बीमार नाम से ही अच्छे हो उठते। फीस के नाम पर डाक्टर हसन एक कौड़ी भी नहीं लेते और दवा भी प्रायः मुफ्त ही बाँटा करते। लोग उनके गुलाम हो गए थे और यश उनके इशारे पर नाचा करता था।

दवा देते-देते बारह बज गए कि अचानक योगेन्द्र भागता हुआ आ पहुँचा। उसके बाल बिखरे हुए थे, साँस फूल रही थी और कपड़े अस्त-व्यस्त थे। आते ही उसने हाँफते हुए कहा—"डाक्टर साहब जल्दी चलिए नहीं तो भाभी मर जायगी।" योगेन्द्र की साँस फूल रही थी।

"कौन भाभी ?" डाक्टर साहब ने जानने के विचार से पूछा क्योंकि रामबाबू की पत्नी के अलावा स्वर्गीय गजेन्द्र की विधवा भी उसकी भाभी लगती थी।

"गजेन्द्र भाई की पत्नी ने, डाक्टर साहब···कुछ···कुछ···एँ···" इसके आगे का शब्द योगेन्द्र कहना नहीं चाहता था या कह नहीं पा रहा था।

"क्या हुआ है उन्हें ?" डाक्टर हसन ने शांत भाव से पूछा।

"उन्होंने कुछ खा लिया है।" कहकर योगेन्द्र ने अपने चारों ओर संदिग्ध भाव से देखा।

"अच्छा-अच्छा अभी चलता हूँ।"

डाक्टर हसन योगेन्द्र के साथ जब उसके घर पहुँचे उस समय रघूबाबू बहुत ही परेशान होकर रामायण पढ़ रहे थे और रामबाबू बेचैनी से घर के भीतर-बाहर घूम रहे थे। डा० हसन को देखते ही सबों की जान-में-जान आई।

रामबाबू बहुत ही दीन स्वर में बोल उठे—"आइए डाक्टर साहब, आइए—इधर से !"

योगेन्द्र की भाभी जमीन पर बिछी चटाई पर अर्ध मूर्छित-सी पड़ी थी। उसका चेहरा किंचित् रक्तिम हो रहा था, आँखों की पुतलियाँ बड़ी हो गई थीं, उसकी शून्य दृष्टि अजीब भयावह लग रही थी, उसका मुँह सूख रहा था और बेहोशी में वह अपने दोनों हाथ इस तरह चला रही थी जैसे कल्पना में, बहुत ही कोमल धागों की गुत्थियों को सुलझाने का यत्न पूर्वक प्रयास कर रही हो।

डाक्टर हसन यह सब लक्षण देखते ही गंभीर हो उठे। उन्होंने मरीज की परीक्षा ली और बोले—'इन्होंने तो धतूरा खा लिया है।"

फिर उन्होंने अपने बेग से लम्बे-लम्बे ट्यूब निकाले और उसके जरिये मरीज के पेट में पानी पहुँचाया। काफी परिश्रम के बाद मरीज से उल्टी करवाई गई। मरीज का पेट साफ हो जाने पर डाक्टर हसन

ने नाड़ी की परीक्षा ली। तब तक वह पूर्णतया होश में नहीं आई थी। उसे दो इंजैक्शन भी दिये गए। और तब लगभग तीन घंटे बाद वह होश में आ गई। कमजोरी फिर भी बनी रही।

डाक्टर हसन बाहर आये। रघूबाबू रामायण पढ़े जा रहे थे। डाक्टर हसन को देखते ही वह उठ खड़े हुए और घबराहट भरे स्वर में बोले—"अच्छी तो हो ही जायगी। क्यों ?"

"हाँ, अच्छी हो जायगी।"

"तब, मैंने तो राम से पहले ही कह दिया था कि रामायण का माहात्म्य कम नहीं है। अरे अभी वह चुड़ैल थोड़े मरेगी। असम्भव।" —यह कहकर रघूबाबू ने एक लोंदा थूक वहीं दीवार पर फेंक दिया।

"जब उस बेचारी से आप लोग ऊब ही गए हैं तो फिर मुझे बुलाने की क्या जरूरत थी।"

"अरे डाक्टर, तुम तो जानते ही हो कि मैं यमराज से भी अधिक पुलिस से डरता हूँ। उस चुड़ैल ने बहुत ज्यादा धतूरा खा लिया था। कहीं मर जाती तो हम लोग भी पुलिस के चंगुल में पड़कर अध-मरे हो जाते।"

"जब आप लोगों को पुलिस का इतना भय है तो ऐसा काम क्यों करते हैं कि वह धतूरा या कोई और जहर खाने पर मजबूर हो जाती है ?"

"इसमें हम लोगों का क्या कसूर है ? तुम भी डाक्टर आदमी हो। बे-सिर-पैर की बातें किया करते हो।"

बे-सिर-पैर की बातें नहीं—सच्ची बातें कह रहा हूँ। किसी ने उस बेचारी को बुरी तरह पीटा है—उसकी समूची देह फूटी हुई है—उसके माथे पर किसी चीज की मार का निशान पड़ा है और वहाँ खून जमा हुआ है। आप लोग मुझे मूर्ख नहीं बना सकते।"...

इसी समय योगेन्द्र घर के बाहर आया और बोला— "डाक्टर-

साहब जरा भीतर चलिए "!

"क्यों ? अब क्या हुआ ?

"चलिए तो !"

डाक्टर साहब भीतर आये। योगेन्द्र की भाभी सरोज अब होश में थी। लेकिन उठकर बैठने की ताकत उसमें अब भी नहीं थी। डाक्टर हसन की आहट पाकर वह थोड़ी सिमट गई।

"अब कैसी तबीयत है" डाक्टर हसन ने पूछा।

"मुझे मरने की कोई दवा दीजिए। आपने मुझे बचाकर मेरा सत्यानाश कर दिया।" सरोज की आवाज में असीम वेदना और अपार करुणा की मूक अभिव्यक्ति थी।

"हिम्मत न हारिए— सब ठीक हो जायगा।"

"क्या ठीक होगा डाक्टर साहब—अब क्या ठीक होगा।"

डाक्टर हसन को लगा—सरोज ठीक कह रही है·····अब क्या ठीक होगा·····कितना कटु सत्य है·····आज के वैज्ञानिक युग को कितनी बड़ी चुनौती है—आज के ज्ञानी, वैज्ञानिक, नेता दार्शनिक और क्रान्तिकारियों पर कितना बड़ा आघात है—'अब क्या ठीक होगा'—? हाँ, एक विधवा की किस्मत – गाँव की अबला का जीवन अब क्या ठीक होगा ? डाक्टर हसन सिर से पाँव तक काँप उठे। इसका क्या प्रतिकार है·····यह मासूम, खूबसूरत स्त्री अब क्यों जीये ? डाक्टर साहब के सामने एक प्रश्न-चिह्न-सा अंकित हो गया। उनकी सहज स्निग्ध मुस्कुराहट कहीं खो गई। वह स्वयं खोये-खोये-से अपने घर लौट आए। घर लौट आए लेकिन उनके दिमाग पर का प्रश्न-चिह्न और गहरा हो उठा। सरोज की मासूम, खूबसूरत और बदनसीब लम्बी जिन्दगी—उसकी फूटी हुई देह उसकी संवेदनशील आवाज डाक्टर हसन के स्निध चहेरे की मुस्कराहट को निगल गई। डाक्टर हसन गुम हो गए—खामोश, बे-जान बुत की तरह !

: ४ :

गाँव का नाम था सुगढ़िया। खुशहाल लोगों की वहाँ कमी नहीं थी। गरीब भी थे—बहुत गरीब। सुगढ़िया गाँव की बगल से ही गंडक नदी बहती थी। इस गाँव में एक मिडिल स्कूल था, डाकघर था, डाक्टर था, अच्छी सड़क थी और छोटा-सा पुस्तकालय भी था। गरज यह कि देश के गाँवों की तुलना में यह गाँव काफी तरक्की पर था।

आदमी कई तरह के होते हैं। एक तो वह होता है जो सहज ही आपका स्नेह पा लेता है—दूसरा वह जो सुकर्मों के बूते पर स्नेह का अधिकारी हो जाता है—तीसरा अपनी ताकत के भ्रम में आपके स्नेह का दावा करता है, चौथा वह जो खानदान, जाति, उम्र और अपनी अनुकूल स्थिति से चेतन होने के कारण तमाम लोगों के स्नेह-श्रद्धा पर अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानता है। गाँव में प्रायः चौथी कोटि के लोग ही अधिक हैं। और रघूबाबू इसी श्रेणी के श्रद्धेय पुरुष थे। कहीं कोई झगड़ा-तकरार हो, शादी-ब्याह हो, पूजा-पाठ हो—वहाँ उपस्थित रहना रघूबाबू अपना हक मानते थे और लोग भी, भय से या परम्परा का खयाल करके उन्हें बुला ही लेते। खुद तो कञ्जूस नम्बर एक थे; लेकिन दूसरों से—मुकदमा लड़वा कर, हद से बाहर शादी-ब्याह करवाकर, यज्ञ करवाकर—ज्यादा खर्च करवा देने में ही अपनी बुद्धिमानी मानते थे। उनके चलते कितने घर बर्बाद हो गए, कितने भाइयों का भ्रातृत्व जाता रहा, कितनी बेटियाँ बूढ़ों के पल्ले बाँध दी गईं और गाँव की कितनी ही विधवाएँ काशी या त्रिवेणी की भेंट चढ़ गईं। फिर भी रघूबाबू जिन्दा थे और गाँव की मौत भी उनकी जिन्दगी के सामने सिर झुकाती थी।

रघूबाबू बहुत दम्भी आदमी थे। वह समझते थे कि गाँव के बाकी लोग भेड़-बकरी हैं; इसलिए सबों के साथ वह वैसा ही व्यवहार करते जैसा

कि एक चरवाहा अपने जानवरों के साथ करता है। लेकिन रघूबाबू मन-ही-मन डाक्टर हसन से कुछ-कुछ घबराते थे। पता नहीं क्यों ? डाक्टर हसन की स्पष्टवादिता में उन्हें अपने प्रति उपेक्षा का संकेत मिलता। और रघूबाबू ऐंठकर रह जाते।

अचला रात में डाक्टर के पास थी, इस बात को लोग भूलने-से लगे; लेकिन रघूबाबू इस मौके को हाथ से जाने देना नहीं चाहते थे। पाँच-छः रोज बाद ही वह घूमते-फिरते डाकघर जा पहुँचे। डाक-बाबू बरामदे में बैठे बीड़ी पी रहे थे।

"ए डाक-बाबू, क्या हाल-चाल है ?" रघूबाबू ने पहुँचते ही अपनी परम्परागत वाणी में डाक-बाबू को चौंका दिया।

डाक-बाबू भी कुछ हद तक उनके स्वभाव से परिचित थे। एक कुर्सी खिसकाते हुए बोले—"आइए रघूबाबू, आपने तो अब इधर आना ही छोड़ दिया।

"अरे क्या आयें ? पूजा-पाठ में ही इतना समय चला जाता है कि खाने-सोने की भी फुरसत नहीं मिलती। गाँव के झगड़े-तकरार की पंचइती करनी होती है सो अलग।.....तुम अपना बताओ.....मन तो लग रहा है तुम्हारा इस गाँव में ?" अधेड़ डाक-बाबू के सूखे-सिकुड़े श्यामवर्ण चेहरे पर रघूबाबू ने अपनी रक्तिम आँखें गड़ाकर पूछा।

डाक-बाबू ने, अपनी बढ़ी हुई दाढ़ी को उँगलियों से मसलते हुए, बड़े दीन स्वर में कहा—"क्या मन लगेगा रघूबाबू, आप लोग तो जमींदार आदमी हैं। आपको क्या पता कि हम नौकरों की कैसी जिन्दगी होती है।"

"हाँ, सो तो ठीक कहते हो डाक-बाबू !" रघूबाबू ने 'डाक' के बाद अनचाहे 'बाबू' शब्द को जल्दी से निकालते हुए कहा—"बड़ा खराब समय आ गया है—आदमी में ईमानदारी और चरित्र-बल तो रह ही नहीं गया है।".....

"हुँह...ईमानदारी और चरित्र-बल"—डाक-बाबू के स्वर में

उपेक्षा के भाव स्पष्ट थे—"ईमानदारी और चरित्र-बल, पेट बाँधकर सोने वाले कहाँ से लायें ? तन और मन ही जब छूटता जा रहा है तो विचार और दृष्टिकोण कहाँ से उदार हों !"

"ठीक कहा तुमने।" रघूबाबू ने बात पकड़ ली—"इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि तुम्हारे तन-मन में जो बदमाशी छिपी है उसे प्रकट होने दो—बाहर आने दो—छिपाओ मत ! यह क्या कि मन में तो साँप बैठा है कुण्डली मारे—और मुँह से अमृत-जैसे वचन बरसाते फिर रहे हो। यह कहाँ की इन्सानियत है ? एँ ?"

"अरे रघूबाबू, आदमी को जिन्दा रहने के लिए सब स्वाँग करना पड़ता है। आज का युग नाटक-युग है—अभिनेताओं का युग। और जो सत्य को मन में छिपाकर मुख पर झूठे रंगीन भाव नहीं ला सकता वह मर जायगा—आप यकीन कीजिए—वह आदमी एक पल भी जिन्दा नहीं रह सकता।"

"लेकिन सत्य को कब तक छिपाया जा सकता है—वह तो सूर्य की तरह निकल आता है बादल को चीरकर।"

"सो तो है ही रघूबाबू—इसी आसरे तो हम नौकरी-पेशा लोग जी रहे हैं—वर्ना आत्म-हत्या कर लेते। लोग ·····देखिए कि मुझे सब मिलाकर साठ-सत्तर रुपये मिलते हैं—और खाने वाले हैं चार। दो लड़के पढ़ रहे हैं। और जब से अचला की माँ मरी है तब से तो मैं बिलकुल अनाथ हो गया—बिलकुल बे-सहारा हो गया। कोई दुःख होता है—पी जाता हूँ। कोई चोट पहुँचाता है—सह लेता हूँ। क्या करूँ ?"

डाक-बाबू की छोटी-छोटी आँखें भर आईं और वह आगे बोल नहीं सके—बुझी बीड़ी सुलगाने लगे।

"धीरज रखो—सब दिन एक-से नहीं होते। तुलसीदास जी ने कहा है—'धीरज धर्म मित्र मित्र अरु·····'।"

"कुछ नहीं बचा"—डाक-बाबू बीच ही में अचानक बोल उठे—"जिन-जिनके नाम आप गिना रहे हैं उन सबों को मैं गँवा चुका हूँ—

परखूँ क्या खाक। रघूबाबू, मेरी जवानी मौत से जूझने में खत्म हो गई और अब बुढ़ापे में सुनहरे दिन की आशा रखूँ ? अब कुछ नहीं बचा। अब क्या होगा—सरकार वैसी ही रहेगी, अफसर वैसे ही रहेंगे, तनखाह वैसी ही रहेगी और मँहगाई भी वैसी ही रहेगी—बस मेरे दुःख का रूप बदलेगा। लड़के कालेज में पढ़ना चाहेंगे—अचला का ब्याह करना होगा—और मुझे अपने कफन की चिन्ता में आत्म-हत्या करनी होगी। बाकी सब वैसे ही रहेगा, जैसे आज है।"

रघूबाबू सोच रहे थे, 'आये थे हरिभजन को ओटने लगे कपास।' उन्होंने जब देखा कि बात का रुख बदलने वाला नहीं है तो वह चुप हो रहे और कुछ देर बाद चलने की तैयारी करने लगे—"अच्छा तो अब मैं चलता हूँ।"

"अरे, बैठिये रघूबाबू ! एक तो आप कभी आते नहीं और जब आज आये हैं तो तुरंत ही चलने की तैयारी भी करने लगे। कुछ पानी-वानी तो पीकर जाइए !" डाक-बाबू साधारण स्थिति में आते हुए बोले और वहीं से बैठे-बैठे अचला को आवाज लगाई—"अचला ! अरी ओ·····अचला ?"

"आई ऽ ऽ ऽ बाबू जी ऽ ऽ ऽ।"·····अचला तेज आवाज लगाती हुई डेरे से बाहर आई। क्षण-भर रघूबाबू की नजर अचला पर अटकी रही—दुबली-पतली, चंचल, मासूम, गोरा रंग, काले रंग की साड़ी में जैसे ढली हुई सुघड़-सजीव चाँदनी·····रघूबाबू का जवान मन कल्पना के पर लगाकर डाक्टर हसन के घर पहुँच गया—·····, 'अँधेरी रात से घिरा हुआ डाक्टर का घर···उसके भीतर एक कोठरी ·····उसमें मद्धिम प्रकाश, डाक्टर हसन का बिस्तर···और अचला··· यह मेनका·····हिन्दू-नारी····· ।'

"इसे तो आप पहचानते ही हैं ?"— डाक-बाबू ने सहज गर्व से पूछा।

"ऐं ! हाँ-हाँ यह भी कोई कहने की बात है।" रघूबाबू को खुशी

हुई कि जल्दी ही उनका मन डाक्टर के पास से वापस लौट आया।

"जा बेटा, रग्घूबाबू के लिए चाय बना ला!"

"अरे नहीं डाक-बाबू, चाय तो मैं पीता ही नहीं।" रग्घू बाबू ने नाक-भौं सिकोड़ लिये।

"फिर ?·····शरबत या दूध·····!"

"हाँ-हाँ·····दूध हो तो पी लूँगा।" रग्घूबाबू ने मन-ही-मन खुश होकर, ऊपर से कृपा का भाव जताते हुए कहा।

अचला भीतर चली गई। रग्घूबाबू को फिर मौका मिला।

"अचला तो अब बड़ी हो गई है ?"

"हाँ, अगले पूस में उन्नीस की हो जायगी।" डाक-बाबू ने सहज सूचनात्मक स्वर में कहा।

"अरे, उन्नीस साल की हो गई ?"—रग्घू बाबू को जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया, "और अब तक कुँवारी बैठी है ?"

"हाँ, ऐसा ही है। अब क्या किया जाये।"

"राम-राम! यह तो तुम बहुत बड़ा पाप कर रहे हो। हमारे हिन्दू धर्म में तो चौदह वर्ष के बाद लड़की को कुँवारी रखने वाले माता-पिता·····"

"अरे छोड़िये हिन्दू-धर्म को। ऐसा भी धर्म क्या, जिसका वास्तविकता, समय और जिन्दगी से कोई सम्बन्ध न हो।" डाक बाबू ने क्षुब्ध होकर कहा।

"लेकिन सोचो तो—जिस समाज में रहते हो·····।"

"मैं किसी समाज में नहीं रहता। मैं स्वयं एक समाज हूँ, जिसका सदस्य मैं स्वयं हूँ—मेरा दुःख अपना है—क्योंकि कोई बाँटने नहीं आता। समझे ?"

"तुम तो अजीब पागलों-सी बातें करते हो। कम-से-कम उस लड़की की खातिर तो सोचो कि कब तक उसे अपने घर में बिठाये रहोगे ?"

"तो आप ही कोई उपाय बताइये। ढूँढ़ दीजिए कोई योग्य लड़का—मैं उसके संग अचला को ब्याह दूँगा।"

"जिन ढूँढा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ·····कबीरदास ने कहा है।" रघूबाबू ने आशान्वित होकर कहा।

"कबीरदास ने केवल कहा ही कहा है—कुछ करने के नाम पर वे चादर का एक पल्ला भी नहीं बेच सके। आप अपनी बात कहिए। जब धर्म और समाज की दुहाई दे ही रहे हैं, तब एक योग्य वर की तलाश भी कर दीजिए।"

"ठीक है, मैं ध्यान में रखूँगा। तुम चिन्ता मत करो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैंने कितने लूलों-लँगड़ों तक का ब्याह रचवा दिया है। अचला को भी कहीं ठिकाने लगाकर निश्चिंत हो जाओ।" रघूबाबू ने फख्र से कहा।

डाक-बाबू की भृकुटि तन गई। बुझी हुई बीड़ी फेंकते हुए उन्होंने कहा—"लेकिन मेरी बेटी पर तो कृपा ही रखिएगा। लूले-लँगड़े या बूढ़े से ब्याहने की अपेक्षा मैं इसका गला घोंट देना बेहतर समझूँगा।"

"तो घोंट क्यों नहीं डालते कि चारों ओर तुम्हारी बदनामी करवा रही है।"

रघूबाबू के व्यंग-बाण से डाक-बाबू का जर्जर हृदय बिंध गया। वह तिलमिलाकर बोले—"क्या कहा ? कौन बदनामी करता है ?"

"सारा गाँव ! तुम्हारी बेटी रात-रात-भर डाक्टर हसन के यहाँ पड़ी रहती····· ।"

"चुप रहिए ! वरना·····!" डाक-बाबू चीख उठे। उनकी चीख सुनकर अचला घर से दौड़ी आई और वहाँ का दृश्य देखते ही वह सन्न रह गई। उसके पिता बेहोश होकर नीचे पड़े थे। रघूबाबू किंकर्तव्य-विमूढ़-से वहीं खड़े थे। तब तक दफ्तर से डाकिया भी निकल आया।

"इन्हें दिल का दौरा पड़ता है क्या ?" रघूबाबू ने सहमते

हुए पूछा।

"हाँ!" अचला ने संक्षिप्त उत्तर दिया और डाकिये को जल्दी डाक्टर हसन को बुला लाने का आदेश देकर डाक-बाबू को वहीं दरी पर लिटा दिया।

पन्द्रह-बीस मिनट में डाक्टर हसन आ गए। कुछ देर की परिचर्या के बाद डाक-बाबू खतरे से बाहर हो गए।

"आप जा सकते हैं।" होश आते ही डाक-बाबू ने रघूबाबू से कहा, जो अब तक बगल में छाता दबाये वहीं खड़े थे—मनहूस भूत की तरह।

रघूबाबू को देखते ही डाक्टर हसन डाक-बाबू के दौरे की वजह समझ गए थे। इसलिए डाक-बाबू से उन्होंने कुछ नहीं पूछा। सिर्फ इतना कहा—

"आपको क्रोध नहीं करना चाहिए। कोई बात हो तो उसे एक मजाक समझकर हँस दीजिए।"

"यह रघूबाबू बड़ा दुष्ट आदमी है। पता नहीं इसने बाबू जी से क्या कह दिया कि इनकी यह हालत हो गई।" अचला ने स्वाभाविक क्रोध से कहा। डाक-बाबू डाक्टर हसन के चेहरे पर शून्य दृष्टि जमाये हुए थे। डाक्टर हसन के शान्त, सौम्य रूप की मूक अभिव्यक्ति से डाक-बाबू के मन का क्षणिक द्वन्द्व मिट गया।

डाक्टर हसन ने डाक-बाबू की फिर परीक्षा ली—कलेजा देखा, ब्लड प्रेशर की गणना की और अचला से बोले—"घबराने की कोई बात नहीं है। तीन-तीन घंटे पर दवा देती रहिए और पूरे तीन दिन तक इन्हें चुप-चाप बिस्तर पर आराम करने दीजिए।"

"डाक्टर साहब!".....डाक-बाबू, जो अब तक खामोश थे, काँपती-भर्राई हुई आवाज में बोले—"ये लोग बड़े पापी हैं।"

डाक्टर हसन क्षण-भर डाक-बाबू की ओर देखते रहे और शान्त स्वर में बोले—

"इससे उन पापियों का मन ही बेचैन रहता है, उनका जीवन ही दुखी होता है, उनकी नींद ही खराब होती है—मेरा-आपका कुछ नहीं बिगड़ता।"

"जानते हैं वह रघूबाबू मुझसे आपके बारे में कह रहा था कि·····।"

"मैं जानता हूँ।"

"एँ!"

"जी हाँ, लेकिन मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं। जब ईमानदारी और सचाई मेरे साथ है, तो मेरा सुख-चैन कोई नहीं छीन सकता। वे गन्दे हैं, तो वे ही गन्दगी में घुट-घुटकर मरेंगे—मेरा क्या!"

डाक्टर हसन की दृढ़ता पर डाक-बाबू न्योछावर हो गए। उनकी इच्छा हुई कि वह डाक्टर को कलेजे से लगा लें, फूट-फूटकर रोएँ, लेकिन वह ऐसा न कर सके और डाक्टर को देखते भर रहे।

डाक्टर हसन अपना बैग उठाकर चलने लगे तो अचला ने टोका—"चाय तो पीते जाइए!"

"जरा जल्दी है। इधर से ही निरसू ठाकुर के यहाँ जाना है। फिर कभी।" और डाक्टर हसन चले गए। डाक-बाबू उन्हें देखते रहे और जब डाक्टर हसन आँखों से ओझल हो गए तो डाक-बाबू ने अचला को देखा, जो उन्हें देख रही थी। दोनों की आँखें मिलीं। दोनों कुछ देर तक गुम-सुम रहे कि डाक-बाबू ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं। अचला दौड़कर उनके कलेजे पर लोट गई। डाक-बाबू की बन्द आँखों से आँसू की बूँदें झर पड़ीं·····एक···दो···तीन!···

: ५ :

काफी रात बीच चुकी थी। डाक्टर हसन 'किन्से रिपोर्ट' पढ़ने में तन्मय थे। उल्लू और चमगादड़ की मनहूस और भयावह आवाज कभी-कभी खिड़की की एक कोठरी में घुस आती, दूर पर गाँव का चौकीदार 'जागते रहना हो ऽ ऽ ऽ ·····' की चीख लगाता और फिर वातावरण पर वही खामोशी का पर्दा लटक जाता; जो पर्दा अपनी ओट में रहस्य, भय, सम्मोहन और नीरव संगीत छिपाये रहता है। डाक्टर हसन ने जम्हाई ली कि अचानक ही उनकी नजर घड़ी पर जा पड़ी। साढ़े बारह बज रहे थे। गाँव के लोग जाड़े की रात में सात-आठ बजे तक ही खा-पी लेते हैं और नौ बजते-बजते सो जाते हैं। डाक्टर हसन को लगा—घड़ी कुछ तेज है। सो उन्होंने खिड़की से बाहर देखा, ध्यान लगाकर समय की आहट का अन्दाजा लिया और फिर बत्ती मद्धिम करके वह लेट रहे। अभी वह अपनी शाल के भीतर हाथ-पैर संतुलित ही कर रहे थे कि दरवाजे पर दस्तक हुई।

दरवाजा खोलकर डाक्टर हसन ने देखा, निरसू ठाकुर बहुत ही अस्त-व्यस्त हालत में घबराया हुआ खड़ा है।

डाक्टर हसन ने स्वाभाविक मुद्रा में पूछा—"क्यों, खैरियत तो है ?" यह पूछते हुए डाक्टर हसन अपने बिस्तरे के पास चले आए। निरसू ठाकुर भी उनके पीछे-पीछे बिस्तर तक आया, लेकिन बैठा नहीं।

"क्या हुआ ?" डाक्टर हसन ने भवें सिकोड़ते हुए पूछा।

"मेरी घर वाली के हाथ-पैर बिलकुल ठंडे पड़ गए हैं। और···और वह बेहोश-सी हो गई है।" निरसू ठाकुर बच्चों की-सी घबराई आवाज में बोला।

"अच्छा, अभी चलता हूँ।" डाक्टर हसन ने उन्हीं कपड़ों पर एक ओवरकोट डाल लिया और वह दवा का बैग लेकर निरसू ठाकुर

के साथ हो लिए।

निरसू ठाकुर की पत्नी की हालत सचमुच ही बहुत खराब थी। संक्षेप में किस्सा यह हुआ कि वह गर्भवती थी, उसे हिस्टीरिया था, वह बात-व्याधि से पीड़ित थी और ऐसे ही भयंकर मौके पर उसे टायफायड हो गया। कुछ दिनों तक तो देहाती जड़ी-बूटी से इलाज चलता रहा और जब हालत बहुत खराब हो गई तब कहीं जाकर निरसू ठाकुर को अक्ल आई और उसने डाक्टर हसन का इलाज शुरू करवाया।

"डाक्टर साहब, इसकी देह में जान तो है ही नहीं···अब तो··· अब तो साँस भी·····नहीं है शायद।" निरसू ठाकुर ने बिलखकर कहा।

"आप जरा एक काम कीजिए, छेदीमल के यहाँ से एक दवा ले आइए—जल्दी।" कहते हुए डाक्टर हसन ने जल्दी से 'कोरामिन' दवा का नाम लिख दिया। निरसू ठाकुर ने पुर्जा हाथ में लेकर बड़े ही दीन भाव से अपनी पत्नी को देखा और जल्दी से घर के बाहर हो गया।

गाँव में मौत का सन्नाटा छाया था। कभी-कभी वही मनहूस आवाज—उल्लू या चमगादड़ की धुप्प और चीं ऽ ऽ ऽ ऽ ···की आवाज अंधकार को भेदती हुई निकल जाती या थान में बँधे मवेशी के गले की घंटी टनटना उठती और बस·····फिर वही नीरवता। दूर पर नदी के उस पार जंगल में गीदड़ बोल उठा·····निरसू ठाकुर को लगा···कोई डाकू घात में बैठा है, जो मौका पाते ही उसका सर्वस्व लूट लेना चाहता है·····। वह दौड़ने लगा कि अचानक उसे याद आया—उसने दवा के दाम तो लिये ही नहीं। वह जरा आहिस्ता चलने लगा, जैसे वह घर लौटकर पैसे ले आने की बात सोच रहा हो। लेकिन···लेकिन उसके घर पर भी तो पैसे नहीं हैं। फिर अब क्या होगा? उसे मालूम था कि छेदीमल बिना पैसे दवा नहीं देगा। क्योंकि अभी चन्द ही रोज हुए उसने एक गरीब गाँव वाले की खातिर

छेदीमल को बहुत खरी-खोटी सुनाई थी—गालियाँ दी थीं।..... यह सब बातें सोचते-सोचते वह छेदीलाल की दूकान तक आ पहुँचा। किवाड़ के फाट से लालटेन की मद्धिम रोशनी बाहर आ रही थी। क्षण-भर कुछ सोचकर उसने दरवाजा खटखटाया। बरामदे में गाँव का चौकीदार सिकुड़कर सोया हुआ था।

"कौन है ?" चौकीदार उठ बैठा।

"मैं हूँ—निरसू !"

"ए.....!" निरसू का नाम सुनते ही चौकीदार चौंक उठा। कुछ लोगों का यह विश्वास था कि निरसू ठाकुर एक भयंकर डाकू है। चौकीदार ने सहमते हुए पूछा— "क्या है निरसू भइया ?"

"मेरी घर वाली की हालत बहुत खराब है। दवा लेने आया हूँ।" निरसू जल्दी से उत्तर देकर दरवाजा खटखटाने लगा।

"कौन है ?" दूकान के भीतर से किसी ने बेरुखी से पूछा।

"मैं हूँ निरसू ! दूकान खोलो ! मुझे यह.....दवा चाहिए।"— कहकर निरसू ठाकुर ने किवाड़ के फाट से होकर दवा का पुर्जा भीतर कर दिया।

"यह दवा नहीं है।" भीतर से पुर्जा बाहर आ गया।

"भाई, किसी तरह इन्तजाम कर दो। मेरी घर वाली मर रही है।" निरसू ने अपने स्वभाव के प्रतिकूल जीवन में शायद पहली बार किसी की मिन्नत की।

"भाई बात यह है कि सेठजी ने यह दवा किसी खास वजह से आलमारी में बन्द करवा दी है।" सेठ के नौकर ने अपनी नीति-निपुणता का परिचय दिया।

निरसू ठाकुर की देह में आग लग गई, लेकिन उसने अपने क्रोध को दबा लिया और कहा—"भाई, तुम चाहो तो वह दवा मुझे मिल सकती है।"

"अब तुम कहते हो तो.....लेकिन इसकी कीमत सात रुपये

पड़ेगी। और वह भी नगद!"—सेठ के नौकर ने कुछ डरती हुई आवाज में कहा।

"नगद ?·····भाई जल्दी में पैसा लाना भूल गया। घबराया हुआ घर से भागा आ रहा हूँ। कल पूरे पैसे चुका दूँगा।" निरसू ने विश्वास दिलाया, लेकिन सेठ का नौकर टस-से-मस नहीं हुआ।

फाटक बन्द होने की वजह से सेठ का नौकर निर्भय होकर बोल रहा था—"तुम तो जानते हो निरसू भइया, मैं नौकर आदमी हूँ। सेठ का हुक्म है कि रात को कोई चीज उधार मत दो - कफन भी नहीं।"

निरसू ठाकुर को लगा कि पल-भर में ही दुनिया उलट गई। उसकी मुट्ठियाँ कस गईं, लोहे-जैसे हाथ तन गए, उसकी छोटी-छोटी आँखें गुस्से की घुटन से सिकुड़ गईं, लेकिन यह समय उपद्रव करने का नहीं—उपाय करने का था। अचानक उसे रघूबाबू की याद आ गई। वह भागता हुआ रघूबाबू के पास पहुँचा। रघूबाबू बरामदे में रखे लम्बे-चौड़े सन्दूक पर सोये थे।

"रघू भइया·····ओ रघू भइया!"

"ओं-ओं ऽ ऽ ·····क्...क्...क्···" रघूबाबू के घिग्घी बंध गई।

"मैं हूँ, रघू भाई—मैं हूँ निरसू!"

"ओ·····तुम हो ?"

"रघूभाई जल्दी से दस रुपये निकालकर दे दो। मेरी घर वाली की हालत बहुत खराब है·····मैं पाई-पाई चुका दूँगा।"

रघूबाबू अपने रुपये उसी सन्दूक में रखते थे जिस पर वह सोते थे और उतनी रात को—निरसू ठाकुर के सामने सन्दूक खोलने के बजाय वह अपनी जान दे देना बेहतर समझते थे। उन्होंने उठकर जम्हाई ली!

"राम-श्री सीताराम·····कितने पहर रात बीती है ?" उन्होंने सिर झुकाकर इतमीनान से आसमान की ओर देखते हुए पूछा।

"रात गिर रही है भइया, डेढ़-दो बजे होंगे। जरा जल्दी करो।"

"ऐं!·····हाँ तो क्या हुआ है तुम्हारी घर वाली को? गोदान-वोदान करवा दिया है कि नहीं?"

"रग्घू भाई, मै आपसे रुपया माँगने आया हूँ।" निरसू ने चिढ़-कर कहा।

"लेकिन·····रुपया तो मेरे पास अभी है नहीं। कल सुबह तक इन्तजाम कर सकता हूँ।" दूसरा वाक्य जरा जल्दी में रग्घूबाबू ने कहा।

"घर में पूछिए रग्घू भाई, आपके घर में कहीं-न-कहीं से इतना रुपया जरूर निकल आयगा। उठिए, जरा इतनी कृपा कर दीजिए। डाक्टर साहब इन्तजार कर रहे होंगे।"

"कौन डाक्टर·····डाक्टर हसन?"

"जी हाँ। उन्होंने कहा है कि ये दवा जल्दी ले आओ तो मरीज की जान बच सकती है।"

रग्घूबाबू सन्दूक पर से नीचे उतरे, खड़ाऊँ पहनी, कान में अँगोछा (तौलिया) लपेटा और बरामदे के बाहरी किनारे पर खड़े होकर आकाश की ओर देखा। फिर बड़े इतमीनान से घर के दरवाजे तक पहुँचे कि उन्हें खयाल आया—'डाक्टर के यश को धक्का पहुँचाने का यही समय है—देखें बिना दवा के वह कौन-सा तीर मारता है! और यह विचार आते ही वह मुड़कर बोले—

"लोगों को जगाना बिलकुल बेकार है! आज ही शाम को घर-भर से बटोरकर नेताजी को पाँच सौ रुपये दिये हैं। वह तिरहुत से अपने लिए दुलहिन खरीदने गया है।" माधो ठाकुर गाँव में नेताजी के नाम से पुकारे जाते थे। वैसे तो वह रेलवे में किसी बहुत ही साधारण पद पर काम करते थे, लेकिन गाँव में बड़ी लम्बी-लम्बी डींग हाँकते, बोलते-बोलते उनके मुँह से फेन निकलने लगता, फिर भी बके

जाते। वह चालीस की उम्र तय करके इकतालीसवें वर्ष में पहुँचे थे, लेकिन अभी तक उनकी शादी नहीं हो पाई थी। बहुत हाथ-पैर मारने पर भी जब किसी लड़की वाले ने उनकी प्रतिष्ठा नहीं की तो अब रग्घू बाबू की सम्मति से तिरहुत से लड़की खरीदने चल दिए। रग्घूबाबू ने नौ सौ रुपये का कागज बनवाकर साढ़े चार सौ रुपये उनके हवाले कर दिए।

"लेकिन ऐसा करो कि·····सुबह तक डाक्टर किसी दूसरी दवा से तुम्हारी घर वाली को बचाये रखे और सुबह होते ही मैं तुम्हारी खातिर रुपये का प्रबन्ध कर दूँगा।"

"लेकिन डाक्टर साहब ने तो दवा का नाम लिख ही दिया है। बिना इस दवा के मेरी घर वाली बच नहीं सकती।"

"अरे नहीं, डाक्टर के पास बहुत-सी दवाएँ होती हैं। वह चाहे तो तुम्हारी घर वाली को जरूर बचा सकता है। पैसे के डर से वह अपनी दवा नहीं दे रहा है। वह डाक्टर; और उसके पास दवा नहीं हो, यह बात मैं मान नहीं·····!"

निरसू ठाकुर पूरी बात सुन नहीं सका और उल्टे पाँव घर की ओर भागा। घर पहुँचकर उसने देखा—डाक्टर हसन उसकी घर वाली के तलवे सहला रहे है।

"बड़ी देर कर दी ?" डाक्टर हसन ने कहा और जल्दी से उठकर दवा के लिए हाथ फैलाया।

"दवा मिली नहीं।"

"क्यों ? यह दवा तो उसकी दूकान में काफी है।"

"उधार देने को तैयार नहीं हुआ।" निरसू ठाकुर ने लज्जा और संकोच से कहा।

"ओफ्फोह, तुम भी अजीब आदमी हो। रुपये मुझसे क्यों नहीं माँग लिये ?·····यह लो चाबी। दरवाजा खोलकर मेरे यहाँ से सौ रुपये निकाल लेना—बिस्तर पर सिरहाने के नीचे ही रुपये पड़े

होंगे। भागकर जाओ !"

निरसू ठाकुर खड़ा रहा।

"जाओ !"—डाक्टर हसन स्नेह-सिक्त क्रोध से चीख उठे—और वहीं मेज पर सिरिंज का डिब्बा रखा है उसे भी लेते आना।"

निरसू ठाकुर इन्कार नहीं कर सका। डाक्टर हसन के अनुग्रह से निरसू ठाकुर का हृदय भर आया, लेकिन वह बोला कुछ नहीं। चुपचाप चाबी का गुच्छा ले लिया और डाक्टर साहब के घर की ओर भागा।

रुपया लेकर जब निरसू ठाकुर सेठ की दूकान पर पहुँचा, उस समय चौकीदार वहाँ नहीं था। निरसू ठाकुर ने सेठ के नौकर को जगाया।

"दरवाजा खोलो, मैं पूरे रुपये ले आया हूँ। जल्दी करो।" निरसू ठाकुर की साँस फूल रही थी। सेठ के नौकर ने दरवाजा खोला, रुपये लिए और दवा निकालकर दे दी। निरसू ठाकुर ने हाथ का 'सिरिंज' वहीं एक बक्से पर रख दिया और दोनों हाथ से दवा लेकर जेब में डालने लगा। सेठ का नौकर वहीं खड़ा था। उसकी सूरत देखते ही निरसू का क्रोध भड़क उठा। 'कसाई प्रेत की तरह लगता है·····साला·····'निरसू के दिमाग में घृणा जल उठी।

"क्यों, तुम्हारे सेठ का रुपया मैं मारकर बैठ जाता ? ऐं ?" निरसू ठाकुर ने दवाएँ जेब में रखते हुए पूछा।

"मैं तो सेठ का नौकर·····।"

"चुप सेठ का बच्चा !"

"गाली मत दीजिए निरसू·····!"

"हरामी, कुत्ता·····नीच·····!" और इन शब्दों के साथ ही निरसू ठाकुर ने पाँच-छः धौल जमा दिये। सेठ का नौकर चीख उठा। सेठ भागा-भागा आ पहुँचा। निरसू ठाकुर ने उसी झोंक में उसकी भी मरम्मत कर दी। दोनों—मालिक-नौकर—की चीख-

पुकार से सेठ जी का पूरा खानदान जग पड़ा। निरसू ठाकुर को जैसे उन्माद का दौरा पड़ गया हो। उसने दूकान की कुछ चीजें भी उलट-पलट दीं और तब सेठ के खानदान को उकटता हुआ अपने घर की ओर भागा।

घर के दरवाजे पर ही डाक्टर हसन खड़े मिले। "यह लीजिए दवा !"

"अब क्या होगा इस दवा से ? तुमने बहुत देर कर दी।"

"जी ?" अस्पष्ट शब्द बोलकर निरसू जड़वत् खड़ा रह गया। उसके हाथ से दवा नीचे गिर पड़ी, लेकिन वह बेहोश खड़ा ही रहा। डाक्टर हसन भी कुछ देर चुप रहे, फिर बोले—"हिम्मत करो और इनकी अन्त्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध करो !" निरसू वैसे ही खड़ा रहा।

"अच्छा, तुम यहीं रहो, मैं जोगी को बुला लाता हूँ। वही सब प्रबंध कर देगा।"

आधे घंटे बाद डाक्टर हसन जब योगेन्द्र और अन्य कई गाँव वालों के साथ वापस पहुँचे तो देखा कि निरसू ठाकुर वहीं—वैसे ही खड़ा है, पत्थर की तरह जिस हालत में वह उसे छोड़ गए थे। योगेन्द्र ने उसे झकझोरा, लेकिन वह विशालकाय शरीर लिये पर्वत की तरह जड़ बना रहा।

डाक्टर हसन उसके कंधे पर हाथ रखकर सहानुभूति-पूर्वक बोले—"यह कोई नई बात नहीं है निरसू, इन घटनाओं से सबक लो और आदमी की तरह मौत का सामना करो। पत्थर बनोगे तो और चोट पड़ेगी। आओ भीतर चलें—आओ !" निरसू यंत्रवत् डाक्टर हसन के साथ हो लिया। उसकी आँखों की पलकें खुली हुई, स्थिर थीं। पता नहीं वह क्या महसूस कर रहा था—पता नहीं वह क्या सोच रहा था और यह भी पता नहीं कि उसका जीवन—उसका दृष्टिकोण किस तेजी से बदल रहा था ! उसकी आँखों के सामने उसके एक-मात्र साथी की लाश पड़ी थी—कपड़े से ढकी—निरसू की भयंकर चीख की खामोश

गूँज-सी और बाहर अंधकार फट रहा था—छँट रहा था; जैसे उसे जमीन-आसमान से भी कोई अच्छी जगह मिल गई हो और निरसू की आँखें अपलक हो रही थीं, लेकिन उसे कूछ सूझ नहीं रहा था; जैसे सारा अन्धकार उसकी आँखों में ही उतर आया हो।

: ६ :

सुबह क्या हुई—निरसू ठाकुर की जिन्दगी में अन्धकार उतर आया। गाँव वाले अपने-अपने काम में रम गए, डाक्टर हसन अपने दवाखाने में बैठकर मरने वालों को जिन्दगी बाँटने लगे, रघूबाबू की जबान रामायण की चौपाइयों और दोहों पर दौड़ने लगी, लेकिन निरसू अपने घर के बरामदे में लेटा-लेटा छत निहारता रहा। अगल-बगल देखते उसे डर मालूम दे रहा था, सूरज की रोशनी उसमें करुणा भर रही थी और सुबह की हवा उसके मन में मनहूसी पैदा कर रही थी।'.....वह पहलवान है.....नामी पहलवान.....दबंग..... उसने अकारण किसी को भी नहीं सताया.....समय पड़ने पर गाँव वालों के लिए जान की बाजी लगा दी.....दस साल पहले गाँव में कुछ डाकू घुस आए थे और उसने अकेले ही, बड़े लाघव से सबोंको खदेड़ दिया.....और रात.....उसकी बीबी (?) मात्र दस रुपये के अभाव में मर गई.....उसकी पहलवानी धरी-की-धरी रह गई.....उसका परोपकार-भाव काँटे उपजाकर रह गया...उसका नाम भ्रम के भँवर में डूब गया.....और.....और.....।'

"यही है हुजूर—इसीने कल रात मेरी दूकान लूट ली।" निरसू ने सिर घुमाकर देखा—सेठ छेदीमल, दारोगा और दो सिपाहियों के साथ दाँत निपोरे खड़ा है। निरसू ठाकुर पड़ा-पड़ा देखता रहा।

"उठो जी, थाने चलो!" दारोगा ने कृत्रिम नरमी से कहा। निरसू ठाकुर उठ बैठा। उसने आँखें उलटकर एक बार सबको देखा। उसकी लाल-लाल भयानक आँखें देखकर सब-के-सब मन-ही-मन काँप उठे। सब चुप रहे! किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि कुछ कहे। कि निरसू ठाकुर एक-ब-एक उठ खड़ा हुआ—उसके दोनों हाथ पीछे बँधे थे। उसने अजीब अर्थपूर्ण भाव से कहा—

"आप लोग जानते हैं कि रात मेरी पत्नी का स्वर्गवास हो गया है।"

"हाँ हाँ, क्यों नहीं। मुझे बड़ा अफ़सोस है कि ऐसे मौके पर हम लोग तुम्हें गिरफ़्तार करने आये हैं। लेकिन क्या किया जाय—मजबूरी है।" दारोगा ने सहानुभूति के स्वर में कहा।

"और यदि मैं आप लोगों के साथ थाने नहीं चलूँ, तो?"

"तुम तो समझदार आदमी हो। जानते हो कि कानून तोड़ना सरकार को चुनौती देना है। और सरकार·····।"

"और सरकार कानून को देखती है—आदमी को नहीं।"—निरसू ने बात पूरी करते हुए कहा—"अच्छी बात है, चलिए! आज मुझे भी मालूम हो गया कि आदमी बहुत सस्ता है और कानून तथा रुपया बहुत मँहगा। आज की दुनिया में आदमी बनना, दया और करुणा से पसीजना, कानून के खिलाफ है, सामाजिक मूल्य की उपेक्षा करना है। चलिए!"·····निरसू बरामदे से बाहर आ गया। दारोगा जी को इस आसान विजय पर बहुत खुशी हुई। सब-के-सब चल पड़े। लेकिन अभी मुश्किल से ये लोग दस कदम ही गये होंगे कि पीछे से दारोगा जी की गरदन पर दनादन दो धौल पड़े और दारोगा जी सूर्य नमस्कार करते नजर आए। निरसू ठाकुर ने बहुत ही क्षिप्र गति से अर्द्धमूर्च्छित दारोगा का पिस्तौल छीन लिया। उसके हाथ में पिस्तौल देखते ही सिपाही और उसके साथ वाले भाग निकले।

सेठ छेदीमल निरसू ठाकुर का रौद्ररूप देखते ही नौ दो ग्यारह हो गया। मैदान खाली देखकर निरसू ठाकुर भी जाने को हुआ कि अचा-

नक उसी दारोगा का ध्यान आया। उसने दारोगा का कंधा पकड़कर उठाया। निरसू ठाकुर के इस्पात-जैसे हाथ की चोट खाकर दारोगा तिलमिलाकर गिर गया था, लेकिन मुँह के बल वह जान-बूझकर डर से पड़ा था। निरसू ठाकूर ने उसके दोनों कंधों को पकड़कर एक बार उसे झकझोर दिया और फिर उसके चेहरे पर आँखें गड़ाकर बोला—"यह तो लीजिए अपना पिस्तौल! फिर मेरी तरफ कदम रखने की कृपा न कीजिएगा। मैंने कोई गुनाह नहीं किया है। सेठ जानवर है। सात रुपये के लिए उसने मेरी घर वाली की जान ले ली और कानून उसका कुछ नहीं बिगाड़ सका! और अभी मेरी घर वाली की चिता भी ठंडी नहीं हुई कि आप लोग कानून की आड़ में मुझ पर जुल्म करने आ गए। जाइए, जो कोई मुझे या किसी कमजोर को सताएगा—उसकी खैरियत नहीं—आज से यही मेरा व्रत हुआ। अब जिन्दगी से मुझे कोई मोह नहीं। जाइए!".....

दारोगा चुपचाप चलता बना। कुछ देर तक निरसू वहीं खड़ा रहा, और फिर सीधा घर पहुँचा। घर में जिस तरफ भी उसकी नजर पड़ती उसका कलेजा फटने लगता। वह ज्यादा देर तक वहाँ नहीं ठहर सका। उसने कुछ कपड़े और जरूरी सामान बाँधा और घर से बाहर निकल आया। घूमकर उसने अपने घर को देखा—देखता रहा। उसकी आँखें भर आईं। अँगोछे से उसने आँखें पोंछीं और एक-ब-एक वह घर से बाहर चल दिया। तीन-चार रोज तक किसी ने भी उसकी खोज-खबर नहीं ली। फिर तरह-तरह की कहानियाँ गाँव में प्रचलित हो गईं। 'निरसू डाकू हो गया है.....कि हरिद्वार जाकर उसने संन्यास ले लिया है..... कि डाक्टर हसन के घर में छिपा पड़ा है... आदि-आदि!'

रघूबाबू को चैन नहीं था। गाँव में इतनी बड़ी घटना घट गई—सेठ पिट गया, उसकी दूकान लूट ली गई, दारोगा पिट गए, निरसू गायब हो गया और रघूबाबू का—इस चर्चा में—नाम तक

नहीं। रघूबाबू मन-ही-मन कुड़बुड़ाते रहे, बुदबुदाते रहे ! आखिर एक रोज उनके हाथ में भी कुछ मसाला मिल गया।

बात यह हुई कि एक रोज वह घूमते-फिरते सेठ छेदीलाल की दुकान पर जा पहुँचे। बात-ही-बात में सेठ ने कहा—"देखिए न रघूबाबू, इधर तीन-चार रोज से ऐसा मिजाज बिगड़ा है कि घर से बाहर निकलना भी छोड़ दिया है—दूकान पर भी नहीं बैठता हूँ। पता नहीं क्या हो गया है। सोचता हूँ आज डाक्टर हसन से कुछ दवा ले आऊँ !"

"अरे वह क्या दवा देगा ?" रघूबाबू ने मुँह बिचकाकर कहा और फिर धीरे से नाटकीय मुद्रा में बोले—"जानते हो, डाक्टर के चलते ही निरसू की घर वाली मरी है।

"छी:-छी: यह आप क्या कहते है।" छेदीमल ने प्रतिवाद किया ?

"अरे मैं ठीक कह रहा हूँ छेदी ! तुम समझते हो मैं झूठा हूँ ?··· यह डाक्टर आज एक महीने से रोज रात को निरसू के घर जाया करता था। और वहाँ जाकर इलाज तो क्या खाक करता था बस बैठकर बदमाशी किया करता था। गुप्त गुण्डा है यह डाक्टर !"

"अब आप कहते है तो·····"

"मैं कहता हूँ ? ····· अरे मैं जानता हूँ यह डाक्टर गाँव को खराब कर रहा है।" रघूबाबू ने नाटकीय क्रोध से कहा। कुछ देर तक सेठ चुप रहा, जैसे अपने मन में डाक्टर हसन के प्रति जमे विश्वास को तोल रहा हो। फिर कुछ दीनता की मुद्रा में बोला—"कुछ हो रघू बाबू, डाक्टर की दवा में बहुत असर है।"

"खाक असर है। फिर क्यों नहीं बचा लिया निरसू की घर वाली को ? यह सब अपनी-अपनी किस्मत है और भगवान् की कृपा कि कुछ लोग अच्छे हो जाते है।"

भगवान् का नाम सुनते ही सेठ का विश्वास हिल गया और एक पहुँचे हुए दार्शनिक की तरह बोला—"भगवान् की लीला अपरम्पार

है रघूबाबू ! उनकी इच्छा के बिना तो पात भी नहीं डोलता है।"

"फिर ? डाक्टर हसन के हाथ में क्या है ? कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं !" छेदीमल देर तक सिर झुलाता रहा।

"जानते हो छेदी, मैं आदमी को दूर से ही पहचान लेता हूँ।" आज सात साल से मैं इसकी हरकतें देख रहा हूँ। यह पूरे गाँव को उजाड़कर छोड़ेगा।·····यह जाति ही ऐसी होती है !····· रघूबाबू थूक का लौंदा फेंककर फिर फुसफुसाहट के स्वर में बोले—"मुझे तो लगता है कि निरसू इसीके यहाँ छिपा बैठा है।"

"अरे हाँ रघूबाबू, एक बात बताना तो मैं भूल ही गया। जिस रात निरसू ने मेरी दूकान को लूटा उसके कल होकर एक चौकी के नीचे देखा कि डाक्टर साहब का सिरिंज पड़ा है। मैं आज तक नहीं समझ पाया कि आखिर यह सिरिंज मेरी दूकान में कैसे आ गया !"

"बस समझ गया।"—रघूबाबू ने उछलते हुए कहा—"उस रात को डाक्टर भी तुम्हारी दूकान पर गया था। जरूर गया था और बाहर ही कहीं खड़ा हो गया था। यह सब शरारत उसी डाक्टर की है।"

"हो सकता है ! इस झूठी दुनिया में किसका क्या भरोसा ?"

"तुमने यह बात दारोगाजी से नहीं कही ?"

"कहता कैसे ? सिरिंज तो दारोगाजी के जाने के बाद पड़ा मिला ?"

"तो अब देर मत करो और सीधे दारोगा जी के पास उसे जमा करा आओ !" रघूबाबू ने इस ढंग से कहा जैसे उस काम से सेठ को बहुत बड़ा लाभ होने वाला हो।

रात-भर में यह बात घर-घर फैल गई कि डाक्टर हसन ने ही सेठ छेदीमल की दूकान लुटवाई। रात-भर यह चर्चा गरम रही—खेत में, खलिहान में, घूरे पर, चौपाल में—सब जगह इसी आश्चर्यजनक समाचार पर टीका-टिप्पणी होती रही। हजार मुँह—हजार बातें। कोई पक्ष में बोलता, तो कोई विपक्ष में। और अभी आकाश में धुँधलका ही छाया था कि रघूबाबू खड़ाऊँ खटखटाते, राम-

नाम से सन्नाटे का भूत भगाते सेठ छेदीमल के यहाँ पहुँच गए। सेठ अभी सो रहा था। रघूबाबू ने आवाज लगाई तो बरामदे में सोया हुआ चौकीदार जग पड़ा। लेकिन रघूबाबू की आवाज पहचानकर पता नहीं क्यों वह दम साधे पड़ा रहा।

छेदीमल के आते ही रघूबाबू ने कहा—"तुमने डाक्टर ? का सिरिंज दारोगा जी को दे दिया ?"

"नहीं तो।"

"क्यों ? क्या तुम्हारी इच्छा है कि हम गाँव वाले मिट जायें ? डाक्टर ने अभी तुम्हारी दूकान लुटवाई है, कल मेरा घर लुटवायेगा और परसों·····कौन है ?" चौकीदार उठकर बैठ गया था, जिसे देखकर रघूबाबू चौंक उठे।

चौकीदार अनजान बनता हुआ बोला—"कितना बजा है ? भोर हो गई क्या ?"

"हाँ महतो ! बस सुबह होने ही वाली है—चार बज रहे होंगे।" सेठ ने कहा और रघूबाबू चुपचाप चौकीदार का जाना देखते रहे।

जब चौकीदार आँखों से ओझल हो गया तब रघूबाबू फिर बोले—"गाँव-भर में आतंक फैल गया है। अगर तुमने दारोगा जी से पूरी-पूरी बातें नहीं बताई तो अनर्थ हो जायगा। समझ लो कि गाँव वाले तुम्हारे घर की ईंट-ईंट खींच लेंगे।"

"क्यों मैंने कौन-सा पाप किया है कि··· ···"

"पाप किया नहीं है—करने जा रहे हो। एक लुटेरे और गुण्डे के मन को बढ़ावा दे रहे हो,—पापियों का साथ दे रहे हो। यह क्या मामूली अपराध है ?"

छेदीमल चिन्ता में डूब गया। वह बनिया था। लाभ-हानि सोच-कर वह कोई काम करता। उसकी समझ में अभी कोई बात नहीं आ रही थी !

वह सोच ही रहा था कि रघूबाबू बोले—"मुझे तो यहाँ तक

खबर मिली है कि डाक्टर हसन तुम्हारे घर की तलाशी करवाने जा रहा है।"

"क्यों ?" छेदीमल ने कौतूहल से पूछा।

"बड़े भोले हो ! तुमने उसके चेले को जेल भिजवाने की कोशिश की।··· ···है कि नहीं बात ?"

"जी हाँ !" सेठ ने स्वीकार किया।

"और अब उसका सिरिंज तुम्हारे घर पर पड़ा है—जिसे वह जानता है। समझे ?"

"जी नहीं।" सेठ के चेहरे पर कौतूहल और भय के भाव आ-जा रहे थे।

"तुम्हारे घर की तलाशी करवाकर वह सिद्ध कर देगा कि तुम चोर हो और इस तरह वह अपने चेले के अपमान का बदला तुमसे ले लेगा और तुम्हारी इज्जत धूल में मिल जायगी। जब से मुझे यह खबर मिली है—नींद नहीं आई। मैं किसी भले आदमी को अपमानित होते नहीं देख सकता।"

सेठ छेदीमल क्षण-भर रघूबाबू का चेहरा देखता रहा। उसके चेहरे पर प्रतिकार के भाव स्पष्ट हो उठे। वह घर से सिरिंज निकाल लाया और रघूबाबू के साथ थाने की ओर चल पड़ा। आकाश में सुबह का धवल संकेत स्पष्ट हो चला था। गाँव के लोग जागने लगे थे। दूर पर कोई वृद्ध अपने भर्राये स्वर में प्रभाती गा रहा था। 'प्रात दरसन दीउ हे गंगा मइया, प्रातव दरसन डीउ,·····और नदियों पर मवेशियों के गले की घंटी की टनटनाहट से सुबह का धुँधलापन मुखरित हो रहा था। पूरे वायु-मंडल का अन्धकार पेड़ों पर सिमट आया था -(शायद जिसके बोझ से) घोंसलों में बैठे पक्षी अपने पर फड़फड़ा रहे थे··· ···और पास के एक घर से चक्की चलने की और उसे चलाने वालियों के गाने की आवाज आ रही थी।

"छठ की तैयारियाँ हो रही हैं– सुबह से ही आटा नहीं पिसवाया

जाय तो काम ही नहीं चले।" रघूबाबू ने चुप्पी तोड़ते हुए अपनी बात जारी रखी—"यह छठ का त्योहार आपके मारवाड़ी लोग मनाते हैं या नहीं ?"

"जी नहीं—यह त्योहार में बिहार में ही देखता हूँ।" सेठ ने कहा।

"यह हम लोगों को बहुत बड़ा पर्व है---सूर्य की पूजा होती है। इस बार मैंने भी दूध चढ़ाने की मनौती मान रखी है।"

फिर दोनों चुप-चाप चलने लगे। गाँव से अलग कुछ दूर पर एकान्त में थाना था। बीच का रास्ता भी नीरव था—और रास्ते के दोनों ओर ताड़ के पेड़ खड़े थे। कुछ दूर चलकर एक खजूर का पेड़ पड़ता था, किसकी जड़ में सघन पत्तियाँ लिपटी हुई थीं और वहीं से सड़क बिलकुल दाहिने मुड़ जाती थी। खजूर का पेड़ पार करके मुड़ी हुई सड़क आई ही थी कि रघूबाबू और सेठ छेदी-मल दोनों सहमकर खड़े हो गए—दोनों डर से काँपने लगे—दोनों की घिग्घी बँध गई। सामने एक दैत्याकार मनुष्य खड़ा था! रघूबाबू के मुँह से कोई स्पष्ट आवाज नहीं निकल पा रही थी, लेकिन मन-ही-मन वह रामायण और हनुमान चालीसा पढ़े जा रहे थे।

"सेठ जी, सिरिंज कहाँ है—मुझे दे दो।" दैत्याकार मनुष्य ने अपने हाथ फैला दिये।

"अरे···तुम···निरसू!" भय-मिश्रित संतोष से रघूबाबू बोल उठे। उनकी आवाज में चापलूसी थी।

"हाँ, मैं ही हूँ। मेरी घर वाली की हत्या करके भी आप लोगों को चैन नहीं मिला तो अब आप लोग मेरे और डाक्टर-देवता के पीछे हाथ धोकर पड़ गए हैं।···लाओ सेठ, सिरिंज दो!" निरसू की हिंसातुर आवाज कड़क उठी।

सेठ ने जल्दी से, काँपते हाथ से, सिरिंज दे दिया। निरसू ने उस छोटे-से डिब्बे को उलट-पलटकर हिला--डुलाकर देखा और उसे जेब के हवाले दिया। दोनों चुप-चाप खड़े रहे। रघूबाबू ने खुशामद

के स्वर में कहा—"आजकल तुम रहते कहाँ हो ? अपने गाँव वालों को तो बिलकुल ही भूल गए जैसे। ऐसा भी कहीं विराग होता है ? तुलसीदासजी ने कहा है कि ....."

"किसने क्या कहा है,यह आप अपने पास रखिए। और मैं जो कहता हूँ उसे गाँठ बाँध लीजिए !"...निरसू ने बात काटते हुए कहा—"अगर आप लोगों ने डाक्टर साहब को कोई नुकसान पहुँचाने की कोशिश की तो मेरा जैसा बुरा आदमी और कोई नहीं होगा। जाइए—आप बुजुर्ग है—इसलिए माफ करता हूँ। जाइए—!" निरसू गरज उठा।

दोनों शर्म के बोझ से भारी पाँव लिये लौट चले। रास्ते पर दोनों ने एक-दूसरे से बात तक नहीं की। सेठ डरा हुआ और खुश था कि झंझट से बचा, रघूबाबू लज्जा और प्रतिशोध से घुट रहे थे कि एक अदना से आदमी ने, सेठ के सामने, उन्हें अपमानित कर दिया.....।

और तब पूरब का आकाश लाल हो उठा था—चूल्हों के धुएँ से वातावरण में हल्की-सी घुटन भर गई थी—चिड़ियाँ अपने घोंसले छोड़कर उड़ गई थीं—उड़ रही थीं और उल्लुओं की जाति कहीं जा दुबकी थी—भीतर किसी कोटर में—अंधकार में—अंधकार की प्रतीक्षा में !

: ७ :

दिन के दो बज रहे होंगे। योगेन्द्र लाइब्रेरी में बैठा कोई किताब पढ़ रहा था कि अचला की आवाज से वह चौंक उठा। अचला भीतर आते ही बरस पड़ी—"तुम्हारे-जैसा कायर आदमी किसी कहानी में भी नहीं मिलेगा।"

योगेन्द्र ने चौंककर देखा—अचला उसके सामने झुकी खड़ी है।

उनके चेहरे पर उपालम्भ के कृत्रिम भाव खेल रहे थे। योगेन्द्र उसे देखता रहा और क्षण-भर बाद फिर किताब पढ़ने का बहाना करने लगा। अचला ने उसके हाथ से किताब छीन ली और उसे एक कोने में फेंक दिया।

योगेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा—"समाज की सम्पत्ति है! इसे फेंकने के अपराध में कठिन-से-कठिन सजा मिल सकती है।"

"वह मैं झेल लूँगी। पहले यह बताओ कि डाक्टर साहब को किस अपराध की सजा दे रहे हो?" अचला के स्वर में सहज संवेदना थी।

"डाक्टर साहब को मैं सजा दे रहा हूँ या तुम! ख्वामख्वाह उनके घर जाकर डट जाती हो और लोग तरह-तरह की बातें ले उड़ते हैं। तुम औरतों की माया अजीब है!"

"हाँ, जिस औरत का पुरुष कायर और निकम्मा होता है, वह औरत माया के सहारे ही अपने अहम् को तृप्त करती है।" यह कहकर अचला कोठरी में लचक-मचककर चलने लगी।

योगेन्द्र मुग्ध दृष्टि से पल भर निहारता रहा, फिर बोला—"अहम् क्षण-भंगुर और खतरनाक अवगुण है। और इस 'क्षणिक' के भ्रम में पड़कर आदमी रहस्य और संदेह की दीवार खड़ी कर लेता है! इस अहम् को खत्म हो जाने दो तो अच्छा हो!"

अचला अचानक ही खड़ी हो गई और तमककर बोली—"हर तथ्य क्षणिक होता है और हर सत्य क्षणभंगुर! तथ्य और सत्य दोनों ही आ चुके होते हैं, बीत चुके होते हैं—और मनुष्य की हर सहज वृत्ति खतरनाक हो उठती है, जब उसे राह नहीं मिलती है। आप शास्त्रार्थ करना बन्द कीजिए और जो पूछती हूँ उसका जवाब दीजिए!"

"पूछो!"

"तुम अपने पिताजी को समझाते क्यों नहीं! डाक्टर साहब पर व्यर्थ के लांछन लगाकर वह कितना बड़ा अन्याय कर रहे हैं!"

"जिन्होंने दुनिया-भर के लोगों को समझने और समझाने का ठेका

ले लिया है उन्हें उनका बेटा क्या समझा सकता है ? ये लोग उस समझ की लाश के पास बैठे रो रहे हैं—जो समझ मनुष्य की प्रथम जिज्ञासा-जनित रहस्यपूर्ण भ्रम की प्रतीक थी। चेतना, तर्क और संवेदनशीलता को इन लोगों ने स्वार्थ के घाट उतार दिया है।" योगेन्द्र की सरोष वाणी से सचाई का ओज फूट रहा था।

अचला ने आजिजी से कहा—"ठीक है कि यह हमारी बातें नहीं समझ सकते, लेकिन देख तो सकते हैं कि इन बातों को बोलने वाला और करने वाला डाक्टर हसन नहीं—तुम हो। तुम सामने क्यों नहीं आते ?"

"दीवार पर सिर मारने से क्या फायदा ? जब मौका आयगा—मैदान में जूझने को तैयार रहूँगा। विश्वास रखो !"

"विश्वास रखने या न रखने से क्या फर्क पड़ता है। तुम इधर साधु बने फिरते हो और बेचारे डाक्टर साहब बदनामी उठाये फिरते हैं। रोना तो इस बात का है कि बदनामी का यह तोहफा देने वाले हैं तुम्हारे पिता। उन्हें क्या मालूम कि उनके लाडले पुत्र जोगी के चोले में……।"

"बोलो-बोलो—चुप क्यों हो गईं ? तुम्हारी बक-झक मुझे बहुत अच्छी लगती है।"—योगेन्द्र ने भावुक होकर कहा।

अचला तैश में आ गई—"और तुम्हारा यह दब्बूपन मुझे बहुत बुरा लगता है।"

"आग बुझाने के लिए आग में कूद पड़ना बुद्धिमानी की बात नहीं है। आग तो ……।" योगेन्द्र पूरी बात कह भी नहीं पाया कि किसी की पद-चाप सुनाई पड़ी। अचला चट से पास की आलमारी में किताबें देखने लगी।

"ओफ्फोह ! बहुत गम्भीरता छा रही है !" डाक्टर हसन ने लाइब्रेरी में घुसते ही कहा ! अचला और योगेन्द्र की जान-में-जान आई। योगेन्द्र अपने हाथ की किताब मेज पर रखकर खड़ा होता हुआ

बोला—"आप ! हम लोगों ने तो समझा कि कोई आफत आ गई।" डाक्टर हसन कुछ देर तक गम्भीर मुद्रा में खड़े रहे, जैसे उनका मन कहीं और चला गया हो, लेकिन क्षण-भर बाद ही उन्हें खयाल आया कि योगेन्द्र ने कुछ कहा है और तब वह जल्दी में बोल उठे—"हाँ योगी जी, बहुत बड़ी आफत आ गई है। अगर हम लोगों ने कोई उपाय नहीं किया तो किसानों की जान खतरे में पड़ जायगी।"

"क्यों ? क्या हुआ ? कहीं से किसी डाकू की चिट्ठी आई है"

"क्या ?" अचला ने घबराकर पूछा।

"अरे नहीं, डाकू-वाकू क्या आयगा। गाँव में प्लेग शुरू हो गया है। अभी मैं एक मरीज को देखकर चला आ रहा हूँ। यह रोग एक को होने का मतलब है—बहुतों का मरना।"

अचला और योगेन्द्र—दोनों डाक्टर हसन का मुँह ताक रहे थे। इस खबर के सुनते ही दोनों के होश उड़ गए। योगेन्द्र बहुत ही चिन्तातुर हो उठा। पीछे खिड़की से धूप की इकट्ठी रोशनी अचला के चेहरे और बालों पर पड़ रही थी, आलमारी के पीछे चूहे ऊधम मचा रहे थे और डाक्टर हसन कुर्सी पर बैठे, दाहिनी हथेली पर ठुड्डी रखे, दरवाजे से बाहर देख रहे थे—लाइब्रेरी की लम्बी छाया-बाहर सन्नाटा, भीतर खामोशी·····सब-के-सब चुप।

"तब ? खामोश होकर बैठने से तो कुछ नहीं बनेगा। सबोंको गाँव छोड़कर दूर किसी खेत में पड़ाव डालना चाहिए।" डाक्टर ने योगेन्द्र को चिन्तित आँखों से देखते हुए कहा।

योगेन्द्र कुछ सोचता-सा बोला—"लेकिन·····लोग घर छोड़ने की बात मान लेंगे ?"

"हम लोगों को यही काम तो करना है। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। यदि शाम होते-होते लोग गाँव छोड़ दें तो बीमारी फैलने से रुक जायगी।"

"उस रोगी की क्या हालत है, जिसे देखकर अभी आप आ रहे

हैं ?" अचला ने सहानुभूति से पूछा।

डाक्टर हसन उठकर खड़े हो गए और बोले—"उस मरीज के घर वालों ने मुझे बुलाने में देर कर दी। अब उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं।"

"कौन है वह मरीज ?" योगेन्द्र ने जानना चाहा।

"आपका पड़ोसी—सुभग ठाकुर !"

"ऐं···!" योगेन्द्र चौंक उठा।"

"जी ! और सबसे मुश्किल है आपके पिता रघूबाबू को गाँव छोड़ने पर राजी करना।"—इतना कहकर डाक्टर हसन ने घड़ी देखी और जल्दी से बोले—"अभी सुभग ठाकुर के लिए एक आदमी शायद दवा लेने आयेगा। मैं चलता हूँ।"

"आप बाबू जी से क्यों नहीं बात करते ?" योगेन्द्र ने कहा।

"कहूँ ? मेरी बात मान लेंगे ?"

"आप डाक्टर हैं। आपकी बात नहीं मानेंगे तो किसकी·····"

"मैं भी आपके साथ चलूँगी।" बीच ही में अचला बोल उठी। डाक्टर हसन ने मुस्कराकर एक बार योगेन्द्र को देखा और फिर अचला को। अचला शरमा गई।

"तुम्हें देखते ही वह घर छोड़ देंगे !" योगेन्द्र ने मजाक किया।

"अच्छी बात है फिर चलिए मेरे साथ। दवा देकर मैं रघूबाबू के पास चल दूँगा।" डाक्टर हसन ने सहज हँसी हँसते हुए कहा और अपना बैग उठा लिया। अचला भी तैयार थी। दोनों लाइब्रेरी से बाहर निकल आए, फिर डाक्टर हसन ने योगेन्द्र की ओर मुखातिब होकर कहा—"आप गाँव वालों को जाकर समझाइए !"

डाक्टर हसन चले गए और अचला भी। 'कितनी ढीठ है यह लड़की' योगेन्द्र बुदबुदाता हुआ लाइब्रेरी बन्द करने लगा। उसी समय रामबाबू कहीं से आ निकले—उनकी नजर दूर पर जाते हुए

डाक्टर हसन और अचला की पीठ पर जमी थी। उसी ओर देखते हुए बोले—"ये दोनों कहाँ से चले जा रहे हैं जोगी ?"

"अचला तो यहीं लाइब्रेरी में थी और डाक्टर साहब एक मरीज देखकर लौटे थे। गाँव में प्लेग शुरू हो गया है।"

"ओ s s ..... । अच्छा s s s ! !" —रामबाबू दूर जाती हुई अचला पर नजर गड़ाए हुए बोले।

"आप लाइब्रेरी में बैठेंगे क्या ? खोल दूँ ?" योगेन्द्र ने जेब से चाभी निकालने की भंगिमा बनाते हुए कहा।

"नहीं-नहीं मैं भी···डाक्टर साहब के पास ही जा रहा हूँ···।" रामबाबू राह पर बढ़ते हुए बोलते गए —"कुछ दवा लेनी है।" योगेन्द्र आशंकित हो उनकी ओर देखता रह गया।

रामबाबू जरा तेज चल रहे थे, फिर भी जान-बूझकर अचला और डाक्टर हसन से अपनी दूरी बनाये रखी। जब डाक्टर हसन और अचला को घर में प्रवेश करते उन्होंने देख लिया, तब वह लम्बे-लम्बे डग भरते हुए डाक्टर हसन के घर के दरवाजे पर जा धमके। दरवाजा भीतर से बन्द नहीं था। रामबाबू क्षण-भर ठहरकर भीतर की आहट लेते रहे और फिर एक-ब-एक भीतर दाखिल हो गए।

"नमस्ते डाक्टर साहब !···और निरसू काका···आप यहाँ ?··· पाँव लागी।" रामबाबू ने स्वाभाविक मुद्रा में बोलने की कोशिश की।

"नमस्ते ! आइए बैठिए ! खैरियत तो है ?" डाक्टर हसन ने सहज स्वर में कहा। उनके चेहरे पर कौतूहल या आशंका के कोई भाव नहीं थे।

"बस कृपा है डाक्टर साहब ! जरा अपनी भाभी के लिए दवा लेने आया था।"

"क्यों ? क्या हुआ ?"

"बुखार हो आया है !"

"ठीक है। आप थोड़ी देर बैठिए—मैं जरा हाथ-मुँह धोकर उधर ही चलता हूँ—फिर देखकर दवा दे दूँगा।" इतना कहकर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही डाक्टर हसन भीतर आँगन में चले गए। कोठरी में बच रहे तीन—रामबाबू, अचला और निरसू ठाकुर ! तीनों चुप-चाप बैठे रहे। अचला मेज पर रखे अखबार उठाकर पढ़ने लगी, निरसू रामबाबू पर नजर गड़ाये बैठा रहा और रामबाबू कभी अचला को देखते, कभी दरवाजे की ओर; और कभी निरसू ठाकुर से उनकी आँखें टकरा जातीं तो घबराकर फिर दूसरी ओर देखने लगते। मेज पर की घड़ी बहुत जोर से टिक्-टिक्-टिक्-टिक् किये जा रही थी। आँगन से डाक्टर हसन से खाँसने-खखारने की आवाज आ रही थी। निरसू ने एक बार आँगन में खुलने वाले दरवाजे की ओर देखा और फिर वह दोनों ठेहुनों का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ। अचला ने, अखबार पर सिर झुकाये-झुकाये ही, छिपी आँखों से निरसू का उठना देखा और किसी आशंका से सिहर उठी।

"राम जरा बाहर आना !" निरसू बोला और दरवाजे की ओर चल पड़ा। रामबाबू का चेहरा पीला पड़ गया। उनके होंठ और कंठ सूखने लगे। लेकिन अपने मन के भय को छिपाते हुए होठों पर चर्म-कम्प मात्र लिये वह घर के बाहर हो गए। निरसू बाहर इन्तजार कर रहा था। रामबाबू को देखते ही वह बोल उठा—"राम, तुम्हारा बाप बड़ा नीच है। वह बिना किसी मतलब के मेरे पीछे पड़ा है—फिर भी मैं उसे बूढ़ा समझकर छोड़ देता हूँ···।"

"मैं उन्हें समझा दूँगा निरसू काका !"···रामबाबू ने आश्वासन के स्वर में तपाक से कहा।

"इसकी कोई जरूरत नहीं है। मैंने तुमको यह कहने के लिए बुलाया है कि अपने बाप की तरह तुम इस बात का प्रचार मत करना कि तुमने मुझे डाक्टर हसन के यहाँ देखा। खबरदार !"

"कैसी बातें करते हैं आप निरसू काका ! मैं क्यों किसी से कुछ कहने जाऊँगा भला ! मैं तो चाहता हूँ कि आप गाँव में ही रहिए—मुझे तो खुशी होती है।" रामबाबू खीसें निपोरता हुआ बोला।

"ठीक है। भीतर चलो !" निरसू ने दरवाजे की ओर हाथ से इशारा करते हुए कुछ नम्रता से कहा।

रामबाबू कृत्रिम हँसी हँसते हुए अपने मन का डर छिपाते हुए बोले—"मुझे तो आज्ञा दीजिए। डाक्टर साहब तो मेरे घर आ ही रहे हैं—मैं तब तक अपनी भाभी को तोष-भरोस दिला दूँ। हें-हें-हें। अच्छा नमस···अँ—अँ···पाँव लागीं।" रामबाबू अपनी जान लेकर भागे। कुछ देर तक निरसू उसका जाना देखता रहा और फिर भीतर चला आया।

अचला शंका और कौतूहल से दरवाजे की ओर टकटकी बाँधे बैठी थी। निरसू को अकेला देखकर बोल उठी—"रामबाबू को कहाँ गायब कर दिया ?"

"शिश्·····।"—निरसू अपने होंठ पर उँगली रखता हुआ बोला—"वह अपने घर गया है—खबर करने कि डाक्टर साहब आ रहे हैं !"

"गये हैं या आपने भगा दिया है !"

"अरी नहीं बिटिया, अपने-आप गया है। डाक्टर साहब से मत कहना कि मैं उसे बाहर ले गया था। अच्छा ?"

"ऐसा नहीं हो सकता !"

"क्या नहीं हो सकता ?" डाक्टर हसन ने कोठरी में प्रवेश करते ही पूछा।

"कुछ नहीं डाक्टर साहब···!" अचला सकपकाती हुई बोली—"निरसू काका कह रहे थे कि इस प्लेग में बहुत आदमी मर जायँगे। इसी पर मैंने कहा कि···।"

"अरे, रामबाब कहाँ गये ?" डाक्टर हसन ने रामबाबू को गायब देखकर बीच में ही पूछ लिया।

"वह घर चले गए। आपको बुला गए हैं।"—निरसू ने कहा। डाक्टर हसन अपने दाएँ हाथ की उँगलियाँ होंठ पर रखे कुछ विचार में डूब गए। फिर होंठ सिकोड़कर कुछ बोलने का उपक्रम करने लगे। अचला और निरसू जिज्ञासा से उनकी ओर देख रहे थे।

आखिर डाक्टर हसन निरसू से बोले—"कुछ रोज के लिए आप यहाँ से बाहर जा सकते हैं ?—यही कोई पन्द्रह रोज के लिए ?"

"अपने मामा के यहाँ जा सकता हूँ।" निरसू ने कुछ सोचते हुए हतोत्साहित स्वर में कहा।

"तो आज ही चले जाइए ! शाम को कोई गाड़ी मिलेगी ?"

"जी हाँ—आठ बजे एक गाड़ी छूटती है।"

"ठीक है—लेकिन पन्द्रह-सोलह रोज बाद फिर वापस चले आइए जरूर !"

"बहुत अच्छा।"—निरसू स्वीकारात्मक ढंग से कुछ देर तक सिर झुलाता रहा। डाक्टर हसन ने दस-दस के तीन या चार नोट निरसू के हाथ पर रख दिए।

अचला के साथ जब डाक्टर हसन गाँव की ओर चले तब उन्होंने कहा—"रामबाबू ने निरसू को मेरे यहाँ देख लिया है। ये लोग ख्वाम-ख्वाह उस बेचारे को परेशान करते। अब दस-पन्द्रह रोज में मैं उसके नाम का वारण्ट खत्म करवा देने की कोशिश करूँगा।"

अचला निरसू की बाबत कुछ बोलना चाहती थी, सो मौका मिलते ही उसने कहा—"कितना ईमानदार आदमी है, फिर भी लोग उसके पीछे हाथ- पैर धोकर पड़े हैं। इन्हीं हरकतों से तो अच्छा आदमी भी बुराई पर उतर आता है।"

"ईमानदार होना ही काफी नहीं होता। ईमानदारी का मतलब जानना और उसके सदुपयोग का ढंग जानना भी जरूरी होता है। निरसू केवल ईमानदार है।"

फिर दोनों चुप हो गए। रघूबाबू का घर पास आ चुका था। दरवाजे पर ही रघूबाबू खड़े थे और वे छिपी नजर से डाक्टर हसन के साथ अचला को आते देख रहे थे।

डाक्टर हसन को देखकर रघूबाबू ने कहा—"इन्हें अपना कम्पाउण्डर बना लिया है क्या ?" जाहिर है रघूबाबू का इशारा अचला की ओर था। डाक्टर केवल हँसकर चुप हो गए।

"किधर जा रहे हो डाक्टर—जरा सुनो तो !" रघूबाबू ने बहुत ही नाटकीय ढंग से नम्र होकर कहा।

"अभी आया ! जरा आपके पड़ोस में एक मरीज को देख आऊँ। अचला जी, आप तब तक यहीं रुकिए या भीतर चलकर बैठिए !"

"अरे, वह तो कब का मर चुका।" रघूबाबू ने बेरुखी से सूचना दी। डाक्टर हसन अचानक ही गंभीर हो गए। अचला डाक्टर को देखती रही—संवेदनशील होकर !

"अच्छी बात है"—डाक्टर हसन एक साँस खींचकर बोले—"कम-से-कम घर वालों को अपनी सहानुभूति तो दे ही आऊँ। तुम यहीं ठहरो अचला !" अन्तिम वाक्य तेजी में कहते हुए डाक्टर हसन पड़ोसी के घर की ओर चल दिए।

अचला रघूबाबू के पास ही रुक गई। रघूबाबू बहुत ही अर्थ-पूर्ण दृष्टि से अचला को घूर रहे थे। उनके होठों पर ईर्ष्या और घृणा से भरी मुस्कराहट काँप रही थी। अचला की नजर दूसरी ओर थी, फिर भी वह रघूबाबू की वेधक दृष्टि को महसूस कर रही थी। और उस पर से यह भयंकर चुप्पी·····अचला ऊब गई। उसने एक लम्बी साँस ली और अचानक ही उसकी आँखें रघूबाबू की आँखों से जा टकराईं।

घबराहट छिपाने के अनजान विचार से अचला अनायास ही बोल उठी—"जोगीजी की भाभी को कबसे बुखार है ?"

"बुखार ?·····अरे हाँ···याद आया। उसे आज ही बुखार आ

गया । लेकिन तुम्हें कैसे मालूम हो गया ?" रघूबाबू ने खीझ के स्वर में पूछा ।

अचला सहज कौतूहल से बोली—"क्यों ?···आपके सुपुत्र रामबाबू डाक्टर साहब को बुलाने गए थे । मैं भी वहीं थी ।"

"राम डाक्टर को बुलाने गया था ?·····कहाँ है···अरे ओ राम-राम !" क्रुद्ध रघूबाबू चीख उठे । रामबाबू भीतर से भागे हुए आ पहुँचे ।

"क्यों तू डाक्टर को बुलाने गया था ?" रघूबाबू ने डपटकर पूछा ।

रामबाबू की सिट्टी-पिट्टी गायब ! उन्होंने घबराई हुई आवाज में सफाई देनी चाही—"बात यह हुई बाबूजी कि···कि मैं···डाक्टर साहब के···डाक्टर साहब को···मैं बाद में आपसे···पूरी बातें बता दूँगा । अब आए हैं तो बहू को भी देख लेंगे ।"

"बहू को डाक्टर से दिखवाने की कोई जरूरत नहीं है ।" रघू-बाबू चीख उठे । अचला किंकर्तव्य विमूढ़-सी खड़ी थी । उसकी समझ में कोई बात नहीं आ रही थी ।

रामबाबू ने आग्रह से कहा—"जरा देख ही लेंगे तो·····"

"नहीं देख सकते ! मरने दो ससुरी को ।" रघूबाबू बीच ही में बोल उठे और गुस्से से काँपते हुए सन्दूक पर जा बैठे । अचला ने रामबाबू को देखा और उनकी चालाकी समझ गई । वह समझ गई कि रामबाबू सी० आई० डी० बनकर हम लोगों के पीछे आये थे और अनचाहे ही डाक्टर साहब को निमंत्रण दे बैठे ।···अचला इन बातों पर विचार कर ही रही थी कि डाक्टर हसन आ पहुँचे । उन्हें देखते ही रामबाबू घबरा गए ।

"चलिए डाक्टर साहब, भीतर चलकर दीदी को देख लीजिए !" अचला ने इस ढंग से कहा जैसे उस घर पर उसका पूरा अधिकार हो ।

डाक्टर साहब भीतर जाने लगे कि रघूबाबू सन्दूक पर से कूद-से

पड़े और बोले—"ए डाक्टर, भीतर मत जाओ! हम लोगों को तुम्हारे इलाज की कोई जरूरत नहीं है।"

"क्यों ?" अचला ने तमककर पूछा।

अचला की निर्भीकता देखकर रघूबाबू सहम-से गये। औरतों से—खासकर अचला-जैसी पढ़ी-लिखी औरतों से उनका कभी मुकाबिला नहीं हुआ था। उन्होंने कुछ दबे स्वर में कहा—"मेरी मर्जी के बिना इस घर में कोई काम नहीं होता।"

"आपकी मर्जी के बिना आपके घर में किसी का जन्म हुआ है या नहीं ?" अचला ने छूटते ही पूछा।

डाक्टर साहब अचला की निर्भीकता और वाक्-चातुरी पर मुस्करा रहे थे। रघूबाबू को कोई जवाब नहीं सूझा, फिर भी बेहया की तरह बोले—"इससे तुम्हें मतलब !"

"मतलब है तभी तो पूछ रही हूँ।···अगर आपकी मर्जी से किसी-का जन्म नहीं हो सकता तो आपकी मर्जी से किसी की मौत भी नहीं हो सकती।···चलिए डाक्टर साहब—भीतर चलिए !"—कहकर अचला डाक्टर साहब का हाथ पकड़कर उन्हें भीतर ले चली। रघू-बाबू देखते ही रह गए।

दोनों के घर में चले जाने पर रघूबाबू का निरंकुश क्रोध फिर जागृत हुआ। उन्होंने दाँत पीसकर रामबाबू से पूछा—"क्यों, उस डायन के लिए तुममें ममता कैसे फूट पड़ी ?"

"आप बात तो समझते नहीं हैं बाबूजी और व्यर्थ नाराज हो जाते हैं। मुझे पता चला कि निरसू डाक्टर के यहाँ हा छिपा हुआ है। इसीका पता लगाने के लिए मैं वहाँ गया, तो डाक्टर ने एक-ब-एक आने का कारण पूछ लिया। बहू बीमार थी ही। मैं जल्दी में बहू की बीमारी की बता गया।"

"तो क्या निरसू को देखा ?"

"हाँ !"···रामबाबू ने धीरे से कहा—"लेकिन यह बात अभी

किसी से मत कहिए वर्ना निरसू मेरी जान ले लेगा।"

रघूबाबू उत्साह से भर उठे। अभी वह कुछ बोलने ही जा रहे थे कि डाक्टर साहब बाहर आ गए। रघूबाबू ने फिर गंभीर मुद्रा बना ली।

डाक्टर साहब बाहर आकर कुछ देर गंभीर खड़े रहे, फिर बोले—"आपकी बहू को प्लेग हो गया है।"

"एँ !!"·····रघूबाबू और रामबाबू—दोनों एक साथ ही बोल उठे।

"जी ! अब आप लोगों को घर छोड़कर गाँव से दूर किसी खेत में जाकर रहना चाहिए। नहीं तो यह बीमारी सबको हो सकती है।"

रामबाबू और रघूबाबू एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

रघूबाबू ने किंचित नम्र होकर पूछा—"अच्छा यह तो बताओ डाक्टर कि अब बहू को कहाँ रखा जाय ?"

"इन्हें भी गाँव से बाहर ले जाइए। लेकिन परिवार से अलग रखिए।" डाक्टर हसन ने जवाब दिया।

"ऐसा क्यों नहीं करते डाक्टर !—अभी तो बहुत-से लोग बीमार पड़ेंगे। क्यों नहीं तुम ही इन पापियों के रहने का प्रबंध कर देते हो ?"

"डाक्टर साहब कहाँ प्रबंध करेंगे ?"—अचला ने छूटते ही कहा —"यह सब काम आप लोगों का है। और आप लोग·····"

डाक्टर हसन ने अचला को हाथ के इशारे से रोक दिया और कहा—"ठीक है, सब रोगियों का इन्तजाम लाइब्रेरी में हो जायगा—औरतें भीतर हॉल में रहेंगी और मर्द बरामदे में।"

"हाँ, यही ठीक होगा।" रघूबाबू ने सहमति प्रकट की। मन-ही-मन वह श्री सीता-राम का गुण-गान कर रहे थे, जिसने उन्हें रोगियों के सम्पर्क में आने से बचा लिया।

अचला के साथ डाक्टर हसन अपने दवाखाने चले गए। शाम उतर आई थी। मवेशियों की आवाज से गाँव की मनहूसियत भंग हो

रही थी। रघूबाबू के पड़ोसी के घर से औरतों के हृदय-विदारक क्रन्दन की चीख वातावरण को मौत की गंध से भर रही थी और अंधकार धीरे-धीरे गहन होता जा रहा था—मौत की छाया की तरह, गाँव को अपने चंगुल में दबोचता जा रहा था।

उधर डाक्टर हसन के घर पर प्लेग का टीका लेने वाले आठ-दस आदमियों की भीड़ लग रही थी और इधर रघूबाबू और रामबाबू निरसू को फँसाने का जाल रच रहे थे। रघूबाबू ने विजयोल्लास की असीमता को छिपाते हुए कहा—"आज ही अच्छा अवसर है। जगुआ से कहो कि वह आज ही हम लोगों के घर सेंध डाले और पकड़ा जाने पर अपने साथी के रूप में निरसू का नाम भी ले दे। जगुआ सात-आठ बार जेल काट आया है, उसका कुछ बिगड़ेगा भी नहीं। बाद में उसे जोतने के लिए मैं कुछ खेत दे दूँगा और अभी २०) रुपए।"

आधी रात बीतते-बीतते लाइब्रेरी में बारह रोगी इकट्ठे हो गए। पाँच नारियाँ और सात पुरुष। डाक्टर हसन, अचला, योगेन्द्र, डाक-बाबू और गाँव के तीन और परोपकारी जन रोगियों की परिचर्या में जुट गए। सेवा-दान करने के विचार से नेताजी भी आए, लेकिन रोगियों का भयावह रूप, हृदय विदारक आह-कराह और पीड़ा देखकर उन्हें अपनी दस वर्षीय पत्नी की याद आ गई और यह कहकर कि—"मैं समाज-सेवा करने से कभी नहीं हटा—मैंने अपना धर्म ही बना लिया है कि देश और समाज की सेवा के लिए जान दे दूँगा। लेकिन मेरी पत्नी को दस्त हो रहे हैं, जरा उसे देख आऊँ, समझे डाक्टर साहब!" —नेताजी ऐसे गायब हुए जैसे गदहे के सिर पर से सींग।

गाँव खाली हो गया। रात की भयंकरता बढ़ती गई। कुछ रोगियों की दशा बिगड़ती गई। डाक्टर हसन एक रोगी की परीक्षा ले रहे थे। रोगी का चेहरा लाल सुर्ख हो रहा था, मरणांतक पीड़ा से वह चीख रहा था—बुखार से उसकी देह तप रही थी। डाक्टर

हसन ने उसे दवा दी, लेकिन तब तक उसकी चेतना ने जवाब दे दिया। फिर सूई दी गई और अन्त में रात के सन्नाटे का पर्दा हटाकर चुपके से यमदूत आ गया और रोगी की वेदना समाप्त हो गई। डाक्टर हसन बरामदे से नीचे उतर आए। अचला भी उनके साथ थी। दोनों सामने अंधकार में देख रहे थे - चुप-चाप और दूर गाँव में एक कुत्ता रो उठा—आऊँ-आऊँ आऊँ ऽ ऽ ऽ कि उसी समय नदी पार गीदड़-समूह का शोर समूचे गाँव पर व्याप गया—हुआँ··· हुआँ...हुआँ····· !

: ८ :

सुबह होते-होते दो रोगियों के प्राण-पखेरू उड़ गए। डाक्टर हसन रात-भर जागते रहे थे, इसलिए अचला ने जबरदस्ती उन्हें आराम करने को घर भेज दिया। अपने घर पहुँचते ही डाक्टर हसन, बिना कपड़े बदले, बिस्तर पर लुढ़क गए। उनकी देह टूट रही थी, आँखें कड़वाहट से भरी थीं और उनका सूना घर उन्हें खामोशी की थपकियाँ दे रहा था। डाक्टर हसन जब आँखें खोलते तो अजीब-अजीब तस्वीरें बनने-बिगड़ने लगतीं और जब आँखें बन्द कर लेते तब वही सूरतें चीखने-चिल्लाने लगतीं·····रात-भर में चार बार योगेन्द्र की भाभी सरोज को देखने गये।····· डाक्टर हसन ने देखा ·····सरोज की गरदन में दोनों तरफ गिल्टियाँ निकल आई थीं·····बुखार से उसकी देह आग बन रही थी, चेहरा लाल हो रहा था लेकिन वह स्वयं चुप थी···दर्द पीने के भाव उसके शीत मुख-मण्डल पर लहरों की तरह तैर रहे थे और उसकी आँखों में एक अजीब सूनापन भरा था—पागलों की आँखों-सा

सूनापन !···वह डाक्टर हसन को देख रही थी···डाक्टर हसन को लगा कि वह वैसे ही देख रही है जैसे कबूतर हत्यारे की तरफ देखता है ।·····डाक्टर हसन ने आँखें बन्द कर लीं। आज उनके जीवन में पहली बार ग्लानि का भाव जागृत हुआ—अपने प्रति ग्लानि, समाज के प्रति ग्लानि, अपने विचार और डाक्टरी पेशे के प्रति ग्लानि ·····तो क्या सरोज को मरने दिया जाय ?·····क्या उसे जिन्दा रखना उसके प्रति अन्याय है ?·····ठीक तो है, वह अब जी-कर ही क्या करेगी ?····· क्या करेगी ?·····क्या·····क्यों ?' ···डाक्टर हसन का मस्तिष्क प्रश्नों के प्रहार से झनझना उठा ।

उन्होंने करवट बदलनी चाही कि देखा फटाक से दरवाजा खोल-कर अचला हाँफती हुई कह रही थी—"सरोज दीदी की हालत अच्छी नहीं है डाक्टर साहब ! जल्दी चलिए !·····चलिए !"

डाक्टर हसन एकटक अचला को देखते रहे—शून्य दृष्टि से ! अचला कौतूहल से भर गई ।

"आपकी तबीयत तो ठीक है ।" अचला ने डाक्टर हसन के सिर पर हाथ रखकर पूछा ।

डाक्टर हसन जैसे एक लम्बी नींद से जाग उठे और धीमी आवाज में बोले—"ठीक हूँ । चलिए !"

काफी परिचर्या से सरोज का रोग नियंत्रण में आ गया । अन्य रोगियों को देखने के लिए डाक्टर हसन बीच में चन्द मिनटों के लिए तीन-चार बार उठे—बाकी दो घंटे तक सरोज के पास ही बैठे रहे ।·····सरोज मौत के चंगुल से बच निकली थी, उसका चेहरा पीला पड़ गया था, निष्प्राण तोते की तरह वह बिस्तर पर शिथिल पड़ी थी, उसका चेहरा शांत और संवेदनशील हो रहा था ।···डाक्टर न जाने क्या सोच रहे थे कि सरोज का क्षीण स्वर सुनकर वह चौंक पड़े ।

सरोज कह रही थी—"आपने फिर मुझे बचा लिया । ···मैंने

आपके प्रति कोई अपराध नहीं किया है···लेकिन आप मुझे सजा पर सजा देते जा रहे हैं।"

डाक्टर हसन ने सिर झुकाकर कहा—"मैं तो डाक्टर हूँ, मेरे सामने आप मरीज भर हैं···आपका इलाज करना मेरा कर्तव्य है।"

"आश्चर्य है डाक्टर साहब !—हर आदमी अपना काम कर्तव्य समझकर ही करता है—भले वह काम कैसा भी हो—भले उस काम का फल जो कुछ भी हो ! डाक्टर साहब, आप तो उदार और दयामय हैं !·····अब आप ही बताइए कि मौत का इलाज तो आपने कर दिया, अब जिन्दगी का इलाज कहाँ होगा·····?"

"आप बहुत घबरा गई हैं। दो का एक सूत्र में बँध जाना और उस बंधन का टूट जाना ही जिन्दगी का अथ और इति नहीं है। जिन्दगी का अर्थ सुख और आनन्द में नहीं है—उसका अर्थ है जूझने में, दुःख में, विफलताओं में और गिर-गिरकर उठने में !"—यह कहकर डाक्टर हसन ने सरोज की ओर देखा। सरोज की आँखें भरी हुई थीं।

वह दूसरी ओर चेहरा फेरकर बोली—"यह ऊँची-ऊँची बातें मैं क्या समझूँ ?·····बस इतना ही समझ पाई हूँ कि यह सब ऊँची-ऊँची बातें पुरुषों के लिए हैं।··· ··· ···शायद आप नहीं जानते कि स्त्रियाँ फूल होती हैं, जिनके जीवन में एक ही बार सूर्योदय होता है।" डाक्टर हसन चुप बैठे रहे।

सरोज की आँखों से अश्रु-धारा बहती जा रही थी। वह बोलती जा रही थी—"मैं जहाँ भटक रही हूँ, वहाँ के अंधकार में सब-कुछ भयानक है ! वहाँ जूझने को कुछ नहीं है—वहाँ केवल घुटन है, प्रतारणा है, जुल्म है। वहाँ सब अपने हैं, लेकिन सबोंका व्यवहार दानवों जैसा··· ··· ···।"

"डाक्टर साहब। जरा बाहर आइए !" सरोज अभी कुछ बोलना ही चाहती थी कि योगेन्द्र वहाँ आ पहुँचा। वह कुछ-कुछ

घबराया-सा था।

"क्यों क्या बात है ?" डाक्टर हसन ने पूछा।

"आइये तो !"

डाक्टर हसन ने बाहर आकर देखा दारोगा खड़ा है। डाक्टर हसन को देखते ही दारोगा ने अभिवादन किया।

"क्यों खैरियत तो है ?" डाक्टर हसन ने अभिवादन का उत्तर देते हुए प्रश्न किया।

दारोगा ने मुस्कराते हुए कहा—"निरसू ठाकुर आपके यहाँ रहता है ?"

"रहता था, लेकिन अब वह यहाँ नहीं है। क्यों ? क्या हुआ ?"

"कल रात इस गाँव में चोरी हो गई और चोर भी पकड़ा गया। उस चोर का कहना है कि निरसू ठाकुर भी उसके साथ था।"

"असम्भव, निरसू तो कल शाम आठ बजे ही यहाँ से अपने मामा के पास चला गया। वह चोर, चोर ही नहीं झूठा और शैतान भी है। एक शरीफ आदमी को··· ·····।"

"लेकिन···" ·····दारोगा ने बीच में ही टोक दिया—"माफ कीजिए, कानूनी तौर पर मुझे आपके घर की तलाशी तो लेनी ही होगी। आपसे अर्ज है कि जरा अपने घर तक चलकर मुझे अपना कर्तव्य पूरा करने में मेरी मदद कीजिए !"

डाक्टर हसन कर्तव्य के बारे में सरोज की धारणा को याद करके हँस पड़े और बोले—"अच्छी बात है, मैं तो व्यस्त हूँ। जोगी जी आपके साथ चले जायँगे।" कहकर डाक्टर हसन ने उस ओर देखा जहाँ योगेन्द्र खड़ा था।

"लेकिन आपका वहाँ मौजूद रहना निहायत जरूरी है।" दारोगा ने कहा।

"अरे, आपको मेरे घर की तलाशी लेनी है या मेरी ?" कहकर डाक्टर हसन ने अचला से पूछा—"जोगी जी कहाँ हैं ?"

"पता नहीं। अभी तो यहीं थे। देखूँ ?"

"छोड़िए, जरा आप ही दारोगाजी के साथ चली जाइए! यह मेरे घर की तलाशी लेना चाहते हैं। इन्हें शक है कि शायद निरसू मेरे यहाँ छिपा बैठा है।"

दारोगा अचला को देखते ही सारा कानून भूल गया और बोला—"ठीक है, फिर इन्हें भेज दीजिए। आइए अचला जी!"

अचला ने डाक्टर हसन की ओर देखा; कुछ ठिठकी और चल पड़ी। डाक्टर हसन कुछ देर तक दोनों का जाना देखते रहे और फिर मरीजों को देखने चल दिए।

डाक्टर हसन के घर पहुँचकर अचला ने देखा—घर के चारों ओर सिपाही तैनात हैं, गाँव के काफी लोग तमाशा देखने की नीयत से पाँच-पाँच, सात-सात की संख्या में इधर-उधर खड़े बातें कर रहे हैं। अचला चुप-चाप घर के भीतर चली गई। उसके पीछे-पीछे दारोगा था। हालाँकि, कानूनी तौर पर दारोगा को चाहिए था कि गाँव के दो-तीन आदमियों को अपने साथ ले ले—फिर घर की तलाशी ले। लेकिन दारोगा ने किसी को भी अपने साथ नहीं लिया और अकेला ही अचला के साथ घर के भीतर दाखिल हो गया।

दारोगा ने घूम-घूमकर सभी कोठरियों को देखना शुरू किया। अचला आगे-आगे चलकर राह बताती जा रही थी और दारोगा मानवता का स्वाद चखे भूखे शेर की तरह अचला के अंग-प्रत्यंग पर नजर गड़ाये चल रहा था। कभी-कभी वह जान-बूझकर अनजाना-सा अचला की देह से सट जाता। अचला कोई महत्त्व नहीं देती और दारोगा की पूरी देह सनसना उठती। सभी जगहें देखी जा चुकी थीं। अब दोनों घर के भीतरी भाग में चल रहे थे। बाहर का दरवाजा काफी दूर था। दारोगा का इरादा अचला पर कुछ हद तक स्पष्ट हो चुका था। लेकिन अचला अपने मन में डर या आशंका के बजाय क्रोध और घृणा सहेजती जा रही थी। अचला की सुघड़-सुन्दर देह को

दारोगा न जाने कितनी बार कल्पना में अपने बाहु-पाश में जकड़ चुका था। और आज अपनी कल्पना को यथार्थ रूप देने का अवसर देखकर वह आनन्द, तन-मन की उष्ण-तीव्रता और भूख की बेहोशी से काँपने-सा लगा।

"तलाशी तो ले चुके और कुछ बाकी है ?" अचला के स्वर में उपेक्षा थी।

"क्या तलाशी लूँ ? मैं तो स्वयं गिरफ्तार हो गया।" दारोगा के कामुक चेहरे पर कमजोरी, ओछापन और भय की हँसी झिलमिल कर रही थी।

"क्या मतलब ?" अचला ने नासमझ बनकर पूछा। दरोगा अधिक समय नष्ट होने देना नहीं चाहता था। उसने बढ़कर अचला की बाईं कलाई पकड़ ली और लड़खड़ाते काँपते पैर को स्थिर करके वह दूसरा हाथ अचला की कमर में डालना ही चाहता था कि चटाक् की ध्वनि से पूरा घर गूँज उठा। अचला ने अपनी पूरी शक्ति बटोरकर दारोगा को ऐसा तबड़ाक मारा कि बेचारे का ब्रह्माण्ड और कान झनझना उठे। क्रोध से दारोगा की देह जल उठी।

वह लपककर अचला को पकड़ना चाहता था कि किसी ने व्यंग-वाण छोड़ा—

"अरेरेरे·····माशूका के साथ ऐसा जुल्म !" दारोगा सकपकाकर रुक गया। अचला ने देखा योगेन्द्र किवाड़ से सटकर खड़ा हँस रहा है। दारोगा लजाया-शर्माया तीर की तरह घर से बाहर हो गया और बाहर आते ही सिपाहियों से 'थाने चलो' का आदेश देकर थाने की ओर चलता चला गया—चुप-चाप, जमीन की ओर सिर झुकाए, तेज चाल से। गाँव के लोग खड़े अवाक् देखते रह गए।

: ६ :

निरसू ठाकुर गाँव से बाहर के रास्ते से स्टेशन की ओर चला। शाम हो गई थी। इक्के-दुक्के लोग स्टेशन से लौट रहे थे। तीन-चार स्त्रियाँ पजा-पाठ के गीत गा रही थीं, जिसकी मद्धम स्वर-लहरी गाँव की सीमा को पार करके गंडक नदी की शान्त धारा पर संतरण कर रही थी। कोई किसी को पंचम सुर में पुकार रहा था—रे हे ऽ ऽ ऽ··· ! चमारों की बस्ती से ढोल-पिपही के बजने की आवाज आ रही थी। और इस तमाम चिल्ल-पों के बावजूद पूरे वातावरण पर एक भयानक मनहूसी व्याप रही थी, ठीक वैसी ही मनहूसी, जैसी अधजली चिता के चारों ओर झूलती रहती है। निरसू तेज कदम रखता हुआ चला जा रहा था। उसके बायें कंधे पर एक मोटी लाठी रखी हुई थी और उसी लाठी के सहारे पीठ पर एक पोटली लटक रही थी। निरसू का दिमाग भी तेजी से दौड़ना चाह रहा था, लेकिन उसे लग रहा था जैसे उसके कमजोर दिमाग पर भी कोई बोझ पड़ा है और वह कुछ सोच नहीं पा रहा है ! बहुत-सी बातों की झलक देखता हुआ उसका दिमाग तेजी से भागा जा रहा था—'अजीब दुनिया है·····उसकी पत्नी मर गई·····उस पर वारण्ट है···उसने किसीका अपकार नहीं किया··· गाँव में प्लेग फैला है और मौत का ताण्डव हो रहा है·····लोग समझते क्यों नहीं·····और वह गाँव छोड़कर जा रहा है·····क्यों··· क्या अपराध ?·····डाक्टर हसन···कितना महान् है, देवता है···और रग्घूबाबू ?·····निरसू ने चलते-चलते पीछे घूमकर देखा—दूर-दूर तक अंधकार···गहन अंधकार, पेड़···और वहाँ बहुत दूर पर गाँव में किसीके बरामदे पर टिमटिमाते हुए लालटन की पीली रोशनी···निरसू ने सिर घुमा लिया। स्टेशन पहुँचकर उसने टिकट कटाया और प्लेटफार्म पर आ पहुँचा। उसने चारों ओर अपनी नजर दौड़ाई। कहीं कोई पहचान न ले, इस आशंका से वह एक किनारे—अंधकार में जाकर

बैठ गया।

इधर कुछ दिनों से अकेले रहते-रहते उसे बीड़ी पीने की आदत पड़ गई थी। अभी उसने बीड़ी का पहला कश ही खींचा था कि दूर पर गाड़ी की तेज रोशनी दिखाई पड़ी, जो धीरे-धीरे करीब आती गई···करीब···बहुत करीब और तब पल-भर में पूरे प्लेटफार्म पर रोशनी फैल गई। अभी गाड़ी प्लेटफार्म पर ठीक तरह से रुकी भी नहीं थी कि उसके खुलने की घंटी टनटना उठी। निरसू लपककर एक डिब्बे में घुसना चाहता था कि भीतर से कई आदमी चीख उठे—"यहाँ जगह नहीं है।" निरसू अगले डिब्बे में लपका कि कोई मोटा सेठ चीख उठा—"ऐ! सिकिण्ड क्लास है। आगे जाओ!" इंजिन ने सीटी दे दी। निरसू लपककर अगले डिब्बे में चढ़ गया। गाड़ी खिसकने लगी थी। निरसू डिब्बे का दरवाजा खोलकर भीतर घुस गया। डिब्बे में कुल चार मुसाफिर बैठे थे। सब-के-सब निरसू की ओर निरीक्षणात्मक दृष्टि से देखने लगे।

एक सूटधारी महाशय उपेक्षा की मुद्रा में कड़क उठे—"यहाँ कैसे चले आए?" सूटधारी महाशय बोलने को तो बोल गये, लेकिन निरसू के डील-डौल को देखते ही उन्हें होश आ गया और जरा नरमी से बोले—"यह इण्टर क्लास है भाई। इसमें चलोगे तो जुर्माना लग जायगा।" निरसू ने सूटधारी बाबू की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। बड़े इतमीनान से उसने अपनी पोटली वहीं सीट पर कोने में रख दी और सिर पर बँधे अँगोछे को खोलकर सीट झाड़ने लगा। उसने इतने जोर से सीट झाड़ी कि धूल से पूरा डिब्बा भर गया। मुसाफिरों ने क्रोध से अपनी-अपनी नाकें बन्द कर लीं, लेकिन डर के मारे कोई कुछ बोला नहीं। निरसू के बैठ जाने पर सब लोग चुपचाप बैठे रहे। गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार पकड़ चुकी थी। निरसू खिड़की से बाहर अंधकार में देख रहा था। न जाने क्यों—उसका मन चीत्कार कर रहा था·····आज वह कितना अकेला है?···

यदि वह मर भी जाय तो क्या होगा ?···रोने वाला तो दूर कोई पानी देने वाला भी नहीं है ।···गाड़ी अंधकार को चीरती जा रही थी—बीच-बीच में इञ्जिन चीख उठता और फिर वही अंधकार ! निरसू ने एक लम्बी साँस ली । ठंडी हवा के झोंके से उसकी आँखें भर आईं ।

सूटधारी बाबू ने अपने सामने बैठे हुए खद्दरधारी सज्जन से पूछा—"आप तो छपरा जा रहे हैं ?"

"जी हाँ ।" खद्दरधारी सज्जन ने इस गंभीरता से उत्तर दिया जैसे जीवन और जगत् की गहन समस्या सुलझाने में उनका मन रमा हुआ हो ।

सूटधारी बाबू भी पूर्ण चेतन थे । उन्होंने छूटते ही कहा—"अगर गार्ड साहब और ड्राइवर साहब की कृपा हुई तो सुबह पाँच बजे तक पहुँच जाइएगा ।"

"इन बेचारों का कोई कसूर नहीं है । जब दिल्ली की सरकार कमजोर है तो ये लोग क्या करें ?"—एक फैशनपरस्त नौजवान ने जेब से सिगरेट निकालते हुए अपनी गर्व-गरिमा का परिचय दिया ।

"ठीक कहते हैं आप ! आप ठीक कहते हैं ।"—खद्दरधारी सज्जन ने फैसला देने के अन्दाज से कहा—"दिल्ली की सरकार में कुछ भी दम नहीं है । और हो भी कहाँ से ? पिछले चुनाव में ऐसे-ऐसे लोगों को टिकट मिल गया कि क्या बतायें ? जनता ने कभी उन लोगों का नाम तक नहीं सुना था ।"

"लेकिन जनता भी तो मूर्ख है । आखिर वह ऐसे लोगों को वोट देती ही क्यों है ?"—सूटधारी सज्जन बोल उठे ।

"तो क्या करें ?"—नौजवान ने तैश में सिगरेट झाड़ते हुए कहा ।

"आदमी पहचानकर वोट दे और क्याकरे !" खद्दरधारी ने

आँखें तरेरकर कहा।

सूटधारी बोल उठा—"लेकिन इसकी गारण्टी क्या है कि पहचाना हुआ आदमी दिल्ली जाकर भी पहचान में ही रहेगा ?"

"आपको पता नहीं है।"—खद्दरधारी अपने स्थान पर जरा डोल-डालकर स्थिर होते हुए बोले—"जो बचपन से ही समाज-सेवा का व्रत धारण किये हैं—वह दिल्ली तो क्या इंगलैंड जाकर भी अपना रूप नहीं बदलेगा। मुझे देखिए—मैं सन् '२९ से देश-सेवा का काम कर रहा हूँ। पिछले चुनाव में मैंने उम्मीदवारों का टिकट माँगा, लेकिन संस्था ने मेरी जगह एक नौजवान को टिकट दे दिया। फिर भी मैं पीछे नहीं हटा। जनता की इच्छा और आग्रह देखकर मुझे चुनाव लड़ना ही पड़ा। और लड़ता कैसे नहीं। आखिर उन्हीं-की सेवा का व्रत तो ले रखा था मैंने।"

"तो क्या आप भी एम० पी० या एम० एल० ए०..."

नौजवान अभी पूरी बात बोल भी नहीं पाया था कि खद्दरधारी ने बात काटकर कहा—"जी नहीं। मैं एम० पी० रहता तो फिर यह दुर्दशा नहीं होती देश की। चुनाव में इतनी धाँधली हुई कि क्या बताऊँ ? मेरे बक्से से पचास हजार वोट गायब हो गए।"

"असम्भव"—नौजवान ने नाक फुलाते हुए कहा।

"मेरे पास इस बात का सबूत है जनाब—आप हैं कहाँ ?" खद्दर-धारी ने रौब से कहा।

"तो फिर आपने केस क्यों नहीं किया ?"—नौजवान ने कहा।

"हुँ-ह केस करने से क्या होता ? चोर का भाई गिरहकट।"

"सो तो आपने ठीक कहा बाबू साहब !"—एक नाटा सेठ बोल उठा, जो अब तक चुप बैठा था—"मेरा पचास हजार रुपये का माल पुलिस ने जब्त कर लिया और जब केस खुला तो इजलास ने पुलिस को साफ छोड़ दिया। मेरा माल भी वापस नहीं मिला। भूखों मरने की

नौबत आ गई। लेकिन व्यापार करना तो हमारे खून में है। भगवान् की ऐसी कृपा हुई कि दो महीने के भीतर ही उस पुलिस अफसर की बदली हो गई। फिर मरा व्यापार ऐसा चमका कि आप लोगों के आशीर्वाद से अब दूकान में पहले से चौगुना स्टॉक है और दोमंजिला मकान भी बनवा रहा हूँ।"

सेठ की बात सुनकर सबके मन में हल्का-सा भेद पड़ गया। सब-के-सब चुप हो गये। नौजवान मन-ही-मन सेठ को गाली दे रहा था—सूटधारी हँस रहा था और खद्दरधारी तरस खा रहा था।

कुछ देर की चुप्पी के बाद नौजवान खिड़की के बाहर अंधकार में देखता हुआ बोल उठा—"गाड़ी तो काफी लेट जा रही है।"

"इससे गाड़ी उलट जाती है।" सेठ ने आतंकित होकर कहा।

खद्दरधारी के होठों पर अहंकार की हँसी थिरक उठी। उसने अपना ज्ञान और अनुभव प्रदर्शित करने के ढंग से कहा—"गाड़ी उलटती है इंजिन की खराबी से और इंजिन खराब होता है कोयले की खराबी से। घूस ले-लेकर बड़े-बड़े अफसर रद्दी कोयला भी पास कर देते हैं और इन तमाम खराबियों की जड़ में है सरकार, जो बिलकुल निकम्मी है।" यह कहकर खद्दरधारी सज्जन ने गर्व से सबके चेहरे पर अपनी नजर फेरी। सब चुप थे। बाहर का अंधकार गहन होता जा रहा था।

"आज कौन-सा दिन है ?" सूटधारी बाबू ने पूछा।

"शनिवार।" सेठ ने उत्तर दिया।

"अरे बाप रे !"—सूटधारी चीख उठा—"आज ही का दिन था और ऐसी ही भयावनी रात। मैं मुगलसराय से आ रहा था कि गाड़ी उलट गई।"

सब लोग मन-ही-मन भय से काँप उठे। गाड़ी का इंजिन चीख उठा। सबकी नजर निरसू पर केन्द्रित हो गई और निरसू चुपचाप अंधकार में देख रहा था।

"अभी-अभी पिछले महीने गाड़ी उलटने की कितनी ही घटनाएँ हो चुकी हैं। यह सब रेल-मंत्रालय की बहादुरी का सुफल है।" खद्दरधारी ने मुँह बिचकाते हुए कहा।

"आप रहते तो जैसे जादू की छड़ी घुमाकर सभी दुर्घटनाओं को रोक लेते।" नौजवान ने व्यंग से कहा।

"और नहीं तो क्या ? वैज्ञानिक युग में सब-कुछ सम्भव है। अगले चुनाव के बाद आप मुझसे मिलिएगा। देखिएगा कि मैं क्या करता हूँ !"

"भाई, अगले स्टेशन पर गार्ड से शिकायत करनी चाहिए। यह ड्राइवर शायद नशा करके इतनी तेजी से गाड़ी चला रहा है।" सेठ ने अपने कोट का बटन लगाते हुए कहा।

"इस बार इतने जोर की बारिश हुई है कि सभी पुल कमजोर हो गए हैं।" नौजवान ने सेठ की ओर देखकर कहा और सिगरेट निकालकर सुलगा लिया।

सूटधारी बाबू बाहर अंधकार में देखता हुआ बोला—

"इस साल सारी दुनिया पर इन्द्रदेव कुपित है।"

"यह सब हम लोगों की सरकार के पास·····" अभी खद्दरधारी सज्जन पूरी बात कह भी नहीं पाये थे कि पूरा डिब्बा जोर से काँप उठा; जैसे किसी दानव ने पकड़कर झकझोर दिया हो। क्षण-भर में डिब्बे की रोशनी गायब हो गई। सेठ चीख उठा और अभी किसी की समझ में कुछ भी नहीं आया था कि निरसू को लगा, उसके सिर पर आसमान आ टूटा है और वह चोट की पीड़ा से कराह भी नहीं पा रहा है। वह सब-कुछ याद करने की कोशिश कर रहा है·····वह कहाँ जा रहा है·····वह कैसे·····

निरसू ठाकुर को जब होश आया तो उसने महसूस किया कि उसका सिर बहुत भारी लग रहा है। उसने चारों ओर अपने हाथ-पैर मारने की कोशिश की, लेकिन फायदा नहीं हुआ। कुछ देर तक

यों ही पड़ा रहकर अपनी ताकत का संचय किया और फिर पूरी देह की ताकत लगाकर उसने उठने की कोशिश की। कोई भारी चीज उसकी देह पर से सरककर दूर जा गिरी। लेकिन अभी भी उसका पैर फँसा हुआ था। थोड़ी मेहनत के बाद उसने अपने पैर भी मुक्त कर लिए। फिर भी वह उठ नहीं सका। उसका सिर पीड़ा से फटा जा रहा था। उसे याद आया·····उसके साथ डिब्बे में चार और मुसाफिर थे। उसने कान लगाकर कुछ सुनने की कोशिश की—दूर-पास से दो-तीन आदमियों के कराहने की आवाज आ रही थी और शायद उन्हीं कराह की आवाजों से पसीजकर अन्धकार का कलेजा फट रहा था।

अभी पूरी तरह सूर्योदय भी नहीं हुआ था कि बहुत-से लोग वहाँ आ पहुँचे। निरसू को 'स्ट्रेचर' पर लादकर गाड़ी में पहुँचाया गया। बहुत अधिक खून गिरने से वह अर्द्ध-मूर्च्छित-सा गाड़ी में पड़ा रहा।

अस्पताल पहुँचने पर डाक्टरों ने उसे देखकर आश्चर्य प्रकट किया—'अरे बाबा, ऐसा घाव लगने पर भी यह जिन्दा है।"

निरसू अपनी जिन्दगी से पूरी तरह वाकिफ था। डाक्टरों की बात सुनकर उसके होठों पर अर्थपूर्ण मुस्कराहट काँप उठी।

: १० :

पिछले चार दिनों से डाक्टर हसन को घण्टे-आध घंटे बैठकर आराम करने की फुरसत नहीं मिली थी। प्लेग का तांडव समाप्त हो चुका था। डाक्टर हसन, अचला और योगेन्द्र ने रोगियों की सेवा में अपनी जान तक की बाजी लगा दी थी। और तब पाँच व्यक्तियों

की बलि लेकर प्लेग शांत हो गया। डाक्टर हसन काम में व्यस्त रहने के कारण अपनी मानसिक प्रतारणा को भूल गए थे। इस लम्बी थकान से डाक्टर हसन के मन में एक अजीब भाव जागृत हुआ—अकेलेपन का भाव, किसी की स्नेह-छाया में सुस्ताने का भाव! डाक्टर हसन सोच रहे थे·····'लोग मुझे देवता समझते हैं···यदि उन्हें पता चल जाये कि मनुष्यों की तमाम कमजोरियाँ मुझमें भी विद्यमान हैं तो··· तो अचला क्या सोचेगी·····और निरसू·····और योगेन्द्र·····?··· मेरे माता-पिता मुसलमान कहलाते थे, लेकिन मैं·····?·····क्या हूँ मैं···? मैं तो अपने को किसी जाति-धर्म का सदस्य नहीं मानता! लेकिन मेरे मानने या न मानने से क्या होता है ?·····मुझे क्या हो गया है ?···मैं अपने विश्वास और आचरण से गिरता जा रहा हूँ··· मुझे किसी के बारे में कुछ नहीं सोचना चाहिए·····मैं किसी को प्यार नहीं कर सकता···और उसे ?·· ···नहीं·····उसे तो बिलकुल नहीं·····।

"नमस्कार डाक्टर साहब!" योगेन्द्र ने आहिस्ता से कोठरी में प्रवेश किया।

"आइए जोगीजी!" डाक्टर हसन ने बिस्तरे पर लेटे-लेटे ही योगेन्द्र को कुर्सी पर बैठने का संकेत कर दिया।

"एक जरूरी काम से आया हूँ डाक्टर साहब!" योगेन्द्र ने किंचित् संकोच से कहा।

"हुक्म दीजिए!"

"अचला के बाबत कुछ·····"

"हाँ-हाँ कहिए!"

"अचला के पिता की बदली हो जायगी।"—योगेन्द्र बहुत मुश्किल से यह वाक्य कह पाया।

"कहाँ ? कब ?" डाक्टर हसन चौंककर उठ बैठे।

"आज ही ऑर्डर आया है।"

डाक्टर हसन के चेहरे पर गंभीरता व्याप गई। वह कुछ देर तक खिड़की के बाहर देखते रहे। दूर-दूर तक फैले हुए खेत—अरहर के चौमास (अगली फसल के निमित्त बनाया हुआ खेत), अदरक और तम्बाकू के खेत पेड़ों पर ढलते हुए सूरज की पीली रोशनी—आम का बगीचा और इक्के-दुक्के आदमियों का आना-जाना·····मौसम में एक नमी, देह में तनाव पैदा करने वाली हल्की पछवा हवा।

"तब ? अचला का क्या होगा ?" डाक्टर हसन ने योगेन्द्र की ओर मुखातिब होकर पूछा।

"यही तो मैं भी नहीं समझ पा रहा हूँ डाक्टर साहब !"

"शादी कर लीजिए।"

"लेकिन शादी तो हो नहीं सकती। अचला बंगाली कायस्थ है—मैं ब्राह्मण हूँ।"

"तो क्या हुआ ? आप दोनों एक-दूसरे को प्यार तो करते है ! अचला के रूप-गुण और रक्त में किसी तरह की कोई कमी तो नहीं है ?"

"यह सब बातें तो हम-आप समझ सकते हैं डाक्टर साहब, पिता या समाज तो जल नहीं जल-पात्र देखता है।"

"आपकी इन दलीलों से मैं बिलकुल सहमत नहीं हूँ। अगर आप स्वयं इन दलीलों से आकर्षित थे, तो अचला से सम्बन्ध जोड़ने के पूर्व आपको अपने पिता और समाज से राय ले लेनी चाहिए थी।" डाक्टर हसन के स्वर में शुद्ध क्रोध स्पष्ट हो उठा था। योगेन्द्र हतप्रभ-सा बैठा रहा। उसका मस्तिष्क तरह-तरह की बातों से चक्कर खा रहा था। वह समाज-सेवी है ···लोग उसे बहुत प्यार करते हैं—पिता की विशेष कृपा उसी पर रहती है—दीन-दुनिया उसे 'जोगी' कहकर पुकारती है और माँ की सहज अभिलाषा को दबा देने के विचार से उसने कितनी बार कहा है—'शादी करना कोई जरूरी तो है नहीं माँ ! तुम्हारे घर में दो-दो बहुएँ हैं—उन्हीं पर सन्तोष करो।'·····और

अब लोग क्या समझेंगे ?···वह किस मुँह से लोगों के पास जायगा···?

योगेन्द्र सिर झुकाए सोचता रहा। डाक्टर हसन उसीकी ओर देख रहे थे, लेकिन चेहरे और आँखों से स्पष्ट था कि वह गहन समस्या को सुलझाने में या यों ही शून्य भाव में ध्यान-मग्न हैं। योगेन्द्र हिचकिचाता हुआ बोला—"फिर मुझे भी गाँव छोड़ना होगा।"

"क्यों ?"

"अचला से विवाह करके मैं रह कैसे सकता हूँ ? यहाँ रहने का मतलब है जीवन को नरक बनाना।"

"लेकिन कब तक भागते फिरियेगा ? कभी-न-कभी इन रूढ़ियों का सामना तो करना ही होगा।"—डाक्टर हसन ने सान्त्वना के स्वर में कहा।

योगेन्द्र जैसे उत्तर देने को तैयार बैठा था। बोला—

"यह सब रूढ़ियाँ तो प्रबल शत्रु-पक्ष-जैसे हैं डाक्टर साहब! खुलकर इनका सामना करने में पराजय की आशंका है, घात में रहना होगा—समय की प्रतीक्षा करनी होगी।"

डाक्टर हसन के चेहरे पर सहज भेद की मुस्कान झलक उठी। उन्होंने कहा—"अपने समाज की परंपरा मत भूलिए जोगी जी—यहाँ के लोग दर्शन को नहीं दार्शनिक को देखते हैं। बुद्ध-धर्म के आगे सिर झुकाने वाले बहुत कम हैं, लेकिन बुद्ध की सभी पूजा करते हैं। लोग उपदेशक के चरित्र, उसके त्याग, उसकी दृढ़ता और उसकी साधना को देखते हैं। आप सामाजिक मूल्य बदलना चाहते हैं तो सामने आइये कि लोग आपको देख सकें—पहचान सकें। घात में रहियेगा तो प्रतिघात का, प्रतिरोध का और प्रतिकार का शिकार होना पड़ेगा और इससे सुन्दर समाज के निर्माण में बाधा पड़ेगी।"

योगेन्द्र चुप बैठा रहा। डाक्टर हसन भी चुप-चाप खिड़की की राह बाहर देखते रहे—सूरज की रोशनी पीली पड़ती जा रही थी।

झाड़ी-झुरमुट और पेड़-पौधों की छाया लम्बी—बहुत लम्बी हो रही थी। दोनों अपनी-अपनी चेतना के जाल में उलझ-सुलझ ही रहे थे कि अस्त-व्यस्त रामबाबू और नेताजी एक घायल आदमी को लेकर आ धमके !

"क्या हुआ है इन्हें ?" डाक्टर हसन ने बिस्तर से उठते हुए पूछा। योगेन्द्र भी जिज्ञासा से उठ खड़ा हुआ। उस आदमी के माथे से खून बह रहा था, उसके कपड़े कई जगह से नुचे हुए थे, मिरजई के सामने का बाँया हिस्सा खून में लथपथ हो रहा था और वह दर्द से कराह रहा था। रामबाबू और नेताजी उसे दोनों ओर से सहारा दिये खड़े थे।

"ललन ठाकुर के आदमियों ने इसे बहुत बे-रहमी से मारा है, भगवान् की कृपा है कि इसकी जान बच गई।" रामबाबू ने जल्दी-जल्दी कहा।

डाक्टर हसन ने उस आदमी के करीब जाकर उसके घाव की परीक्षा लेते हुए गम्भीर होकर कहा—"वैसे आप लोगों ने तो इसे मार डालने की कृपा ही कर दी थी। लें आइए इसे दवाखाने में।"

उस आदमी की मरहम-पट्टी कर दी गई। डाक्टर हसन फिर अपनी कोठरी में चले गए। घायल आदमी को बाहर बैठाकर रामबाबू और नेताजी डाक्टर हसन के पीछे-पीछे कोठरी में चले आए।

"डाक्टर साहब !"—रामबाबू आरजू-मिन्नत की मुद्रा बनाते हुए कह रहे थे—"एक सर्टिफिकेट दे दीजिए !"

"कैसा सर्टिफिकेट ?" डाक्टर हसन ने अनजान बनते हुए पूछा।

"यही कि इस आदमी को जान से मार देने के विचार से इस पर हमला किया गया औ, औ, ओ·····र····· ।"

"आप लोगों के पास जाल रचने के सिवा और कोई काम नहीं है ?"—डाक्टर हसन ने बात काटते हुए कहा—"दुनिया किस तेजी

से आगे बढ़ रही है और आप लोग हैं कि ईर्ष्या, द्वेष और स्वार्थ की दलदल में जान-बूझकर अपने पाँव धँसा रहे हैं ! कभी-कभी भूल से भी अच्छी बातें सोच लिया कीजिये !"

"लेकिन डाक्टर साहब, यह जुल्म है।" नेताजी ने तड़पकर कहा —"ललन ठाकुर ने मेरी जमीन पर कब्जा तो कर ही लिया है और उस पर से इस तरह के जुल्म करता है ! आप जरा एक 'सर्टिफिकेट' दे दीजिए; फिर देखिए कि मैं उसके घर का बरतन-बासन भी नीलाम पर चढ़वा देता हूँ।"

"जरा ठंडे दिमाग से विचार करके बोलिए नेता जी !"—डाक्टर हसन ने मुस्कराते हुए कहा—"दूसरे की चीजें नीलाम करवाने से पहले आप अपनी चीजें बेचते चले जा रहे हैं। आपने कभी सोचा भी है कि इस बेकार झगड़े से फायदा क्या होगा ?"

"यह आपसे किसने कह दिया है कि मैं अपनी चीजें बेचता चला जा रहा हूँ। आपको मालूम होना चाहिए कि इधर दो वर्ष के भीतर मैंने पाँच कट्ठे खेत खरीदे हैं।" नेताजी ने सगर्व कहा।

डाक्टर हसन ने किंचित मुस्कराते हुए पूछा—

"ललन ठाकुर तो आपके भाई हैं न ?"

"हाँ।"

"आपकी कितनी जमीन उन्होंने अपने कब्जे में दाब रखी है ?"

"तीन कट्ठा।" नेता जी ने गंभीरता से जवाब दिया।

"और आपने हिसाब जोड़ा है कि चार साल तक मुकदमा लड़ने में आपने कितना कर्ज लिया है ?" डाक्टर साहब की भंगिमा में सहानुभूति और तरस के भाव सजीव हो उठे थे।

"जी हाँ ! अब त ऽ ऽ ऽ क···चार हजार रुपया कर्ज ले चुका हूँ।" नेता जी ने कुछ हतोत्साहित होकर कहा। और फिर रामबाबू की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

"मुकदमा जीत जाने पर पाई-पाई निकल आयगा।" रामबाबू

ने तपाक से कहा ।

"ऐसा मुकदमा लड़ने से ही क्या फायदा कि जीवन-भर परेशानी और कर्ज उठाना पड़े ?" डाक्टर हसन ने सहज स्वर में पूछा ?

रामबाबू जल उठे । उन्होंने तमककर कहा—"खैर हटाइए, इन बातों से आपको क्या लेना-देना है । आप इतनी कृपा कीजिए कि एक सर्टिफिकेट दे दीजिए ।"

"झूठा सर्टिफिकेट देने की मुझे आदत नहीं है ।"

"झूठा ?" रामबाबू और नेता जी एक साथ बोल उठे ।

योगेन्द्र चुप-चाप बैठा मुस्करा रहा था ।

डाक्टर हसन ने कहा—"इस आदमी का घाव लाठी या किसी और हथियार की चोट का घाव नहीं है । लगता है जैसे यह पत्थर पर गिर गया हो या दीवार से टकरा गया हो । यह बनाया हुआ झूठा केस' है ।" रामबाबू और नेता जी एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे ।

"तो सर्टिफिकेट नहीं मिलेगा ?"—नेताजी ने कुछ रोष, कुछ आजिजी से पूछा ।

"नहीं । और मेरी राय मानिये तो सुलह कर लीजिये । आखिर ललन ठाकुर भी आपके ही भाई हैं । दूसरे के उकसावे में आकर आप व्यर्थ ही अपनी जायदाद गँवाते जा रहे हैं ।"

"जायदाद के लिए इज्जत गँवाना हम लोग बुद्धिमानी की बात नहीं मानते ।"—रामबाबू नेता जी की अस्थिर मुद्रा देखते ही बोल उठे—"नेता जी आन पर मर मिटने वाले आदमी हैं ।"

डाक्टर हसन ने नेता जी की ओर देखा और फिर रामबाबू की ओर । क्षण-भर वह मुस्कराते रहे कि रामबाबू ने जरा रौब से कहा—"हम गाँव वाले गँवार हैं, लेकिन अपने अधिकार और इज्जत के महत्त्व को खूब समझते हैं ।"

"तो क्या ललन ठाकुर आपके गाँव के नहीं हैं ? उनकी इज्जत

का कोई महत्त्व नहीं है ? और क्या भीख माँगने से भी किसी की इज्जत बढ़ती है।"—योगेन्द्र, जो अब तक चुप बैठा था, बोल उठा। रामबाबू की भौंहें तन गईं—दाँत पीसते हुए वे बोले—"तुम्हें भी डाक्टर साहब ने गुरु-मंत्र दे दिया है क्या ? किताबें पढ़-पढ़कर तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।"

"जो कुछ मैंने कहा है वह तो बिना सीखा-पढ़ा आदमी भी बोल सकता है। बस थोड़ी ईमानदारी होनी....."

"चुप रहो !" -रामबाबू चीख उठे।

"नाराज न होइए रामबाबू"—डाक्टर हसन ने जिम्मेवारी अपने ऊपर लेने की इच्छा से कहा—"किसी का दिमाग अच्छी-अच्छी बातों से खराब होता है और किसी का बुरी बातों से। अपना-अपना दिमाग है ....."

"मेरा दिमाग जितना बड़ा है उतना बड़ा दिमाग मेरे अफसर का भी नहीं है—पानी पिलाये रहता हूँ सबोंको।"—नेता जी ने 'मियाँ समझे प्याज' की सार्थकता सिद्ध करते हुए कहा—"प्रेम से और मुहब्बत से कोई मेरा सिर भी काट सकता है, लेकिन आँख दिखाने वालों के लिए मैं बाघ हूँ, बाघ। एक बार एक अफसर ने मुझे डैम-फूल कह दिया। बस मैंने उसे ऐसा झाड़ा कि वह बकर-बकर मेरा मुँह ताकता रह गया। फिर गाँव वालों को मैं क्या समझूँगा।"

नेता जी की बातें सुनकर डाक्टर हसन और योगेन्द्र को हँसी छूट रही थी, लेकिन किसीने अपने भाव प्रकट नहीं होने दिए। वर्ना घण्टे-भर भाषण सुनना पड़ जाता।

रामबाबू विषयान्तर की स्थिति को टालने के विचार से बोल उठे—"खैर, हटाइए इन बातों को।"...और डाक्टर हसन की ओर देखकर गंभीरतापूर्वक बोले—"एक सर्टिफिकेट दे दीजिए। इसमें आपका क्या बिगड़ता है !"

डाक्टर हसन ने सिर झुकाकर नाहीं कर दी। रामबाबू भीतर-

ही-भीतर ऐंठकर रह गए । लेकिन क्या करते ? चुपचाप उठकर खड़े हो गए—

"अच्छी बात है । हम लोग चलते हैं ।"

"अच्छा नमस्कार !"—डाक्टर हसन ने अपने हाथ जोड़ दिए । रामबाबू और नेता जी ने अपने-अपने हाथ बे-मन से जोड़ दिये और चलते बने ।

"यह नेता जी भी बिलकुल पागल है ।" योगेन्द्र बोल उठा ।

"पागल है नहीं, बनाया गया है । सीधा-सादा आदमी है, लेकिन लोगोंने इसे चढ़ा-बढ़ाकर 'नेताजी' 'नेताजी' कह-कहकर इसमें अज्ञानता की चेतना जागृत कर दी है । और अब यह महसूस करता है कि लोग सचमुच ही उसे ज्ञानी, नेता और अनुभवी मानते हैं।···लेकिन रामबाबू आपसे नाराज हो गए । आपको बीच में नहीं बोलना चाहिए था ।"

"मैं इतना कायर नहीं हूँ डाक्टर साहब ! नाराज हो गए हैं तो होने दीजिए । मुझे इसकी चिंता नहीं है ।"—योगेन्द्र ने चेतन-मन से कहा ।

कुछ देर तक डाक्टर हसन खामोश रहे, फिर एक झटके से उठे और सिगरेट निकालकर जलाते हुए बोले—"मरीजों को देखने लाइब्रेरी चलना चाहिए ।"

"चलिए ।"

"लेकिन आप तो मेरे पास किसी काम से आये थे ?"

"जी हाँ ! जरा अचला को आप समझा देते तो ···।"

"मैं समझा देता ?"—डाक्टर हसन ने अपनी दाहिनी हथेली को कलेजे पर टेढ़ा रखते हुए तपाक से कहा—"मैं उन्हें क्या समझा सकता हूँ ?"

"यही कि·····उसे धीरज और विश्वास से काम लेना चाहिए ! म अनुकूल समय आते ही·····"

"देखिए जोगी जी·····मैं बहुत साफ आदमी हूँ ।" डाक्टर

हसन बोल उठे—"बात यह है कि प्रेम के मामले में औरतें किसी की बात या बीच-बचाव को पसन्द नहीं करतीं। अचला भी कोई अपवाद नहीं है। और जिस अनुकूल समय के भरोसे आप अचला को ढाढ़स बँधाना चाहते हैं, वह समय अपने देश के गाँवों में अभी कम-से-कम तीस साल तक आने को नहीं है।"

"फिर क्या उपाय है ?"

"शादी।"

"लेकिन गुजर कैसे होगी ?"

"दुनिया में सबसे मुश्किल बात है उपयुक्त संगिनी पाना। और जब यह बात आसान हो जाती है, तो रास्ता अपने-आप निकल आता है। चलने वाले ही राह भी बनाते हैं !" डाक्टर हसन ने मुस्कराते हुए कहा।

योगेन्द्र के होठों पर कृत्रिम मुस्कराहट काँप रही थी। उसकी आँखों में परेशानी झलक रही थी।

डाक्टर हसन कपड़े पहनकर चलते-चलते बोले—"मैं अपनी ओर से यही कह सकता हूँ कि मेरा घर, मेरी छोटी- सी पूँजी और मेरा स्नेह आप लोगों का है। मेरी इन चीजों की आप को जब कभी जरूरत हो—बिना किसी हिचक के सदुपयोग कर सकते हैं।'

डाक्टर हसन मन-ही-मन योगेन्द्र की व्यथा को महसूस कर रहे थे और साथ ही अपनी स्थिति और पहुँच को भी तोल रहे थे। वह जानते थे कि योगेन्द्र समाज से भय खाता है—एक संस्कारगत कायरता उसके दिल में बैठी है। लेकिन वह यह भी जानते थे कि यदि योगेन्द्र को प्रोत्साहन और पथ-प्रदर्शन मिले तो वह भारी-से-भारी काम कर सकता है।

योगेन्द्र के साथ डाक्टर हसन जब लाइब्रेरी पहुँचे तो देखा कि अचला एक मरीज का 'टेम्परेचर' ले रही है। अचला के चेहरे पर परेशानी या निराशा की झलक तक नहीं थी। वह हमेशा की तरह

स्फूर्ति और चंचलता से भरी थी। डाक्टर हसन ने एक-एक करके सब रोगियों को देखना शुरू किया।

इसी बीच अचला अचानक बोल उठी—"सरोज दीदी आज बहुत रो रही थीं।"

"क्यों ?" डाक्टर हसन ने कान से 'आला' निकालते हुए गंभीरता-पूर्वक पूछा !

"पता नहीं।" अचला ने सहज उत्तर दे दिया ।

डाक्टर हसन कुछ देर तक वहीं खड़े रहे—दूर पर शून्य दृष्टि गड़ाये—चिंतालीन और फिर चेहरे पर एक अजीब तरह का तनाव लिये मरीजों को देखने लगे।

शाम उतर आई थी। पश्चिम का आकाश लाल—सुर्ख लाल रेशों, धब्बों और टुकड़ों से चित्र-पटी-सा हो रहा था। संध्या-संगीत की लहरों पर थकान भरी नीरवता गूँज रही थी। डाक्टर हसन ने आकाश की असीमता को देखा और एक लम्बी साँस छोड़ते हुए धीरे-धीरे हॉल की ओर चले। सरोज छत में आँखें गड़ाये पड़ी थी।

"कैसी तबीयत है ?"—डाक्टर हसन ने पूछा। सरोज ने कोई जवाब नहीं दिया। वह छत की ओर देखती रही !

"सुना, है आज आप बहुत रो रही थीं !" डाक्टर हसन ने वहीं बिस्तर के पास रखे एक स्टूल पर बैठते हुए कहा—सरोज फिर चुप रही। डाक्टर हसन ने सरोज की नब्ज देखी और बोले—"अब तो अच्छी हैं आप !"

"यही तो रोना है।"—सरोज छत की ओर देखती हुई ही बोली।

"इसमें रोने की क्या बात है ?"

"मैं मरना चाहती हूँ।"

"नहीं, आपको मरना नहीं है। दुःख से ऊबकर मृत्यु की इच्छा रखने वाले कायर कहलाते हैं और मेरी नजर में कायरता से बढ़कर

और कोई पाप नहीं।"—डाक्टर हसन ने सहज स्वर में कहा। सरोज फिर भी छत में नजर गड़ाये रही। डाक्टर हसन ने अपनी बात जारी रखी—"आदमी की कोई मंजिल नहीं होती—कोई पड़ाव नहीं होता। आदमी के सामने केवल राह होती है और अपनी राह पर ईमानदारी से चलते चले जाना ही जिंदगी का परम सन्देश है। निराश मत होइये!"

"अब किस चीज की आशा रखूँ?"

"शहीद बनने की। आपके पीछे और भी नारियाँ हैं, जिन्हें आप, अपने स्वार्थ के अंधकार के चलते, नहीं देख पा रही हैं।"

"मेरा तो कोई स्वार्थ नहीं है।"

"है! अपनी जिम्मेवारी दूसरों के भरोसे छोड़ जाना स्वार्थपरता नहीं तो और क्या है? आप राह बनाने का काम, मरकर, आने वाली पीढ़ी पर छोड़ जाना चाहती हैं।"

सरोज ने डाक्टर हसन को देखा। डाक्टर हसन भी सरोज को देख रहे थे। सरोज की आँखों में वेदना, दीनता और जिज्ञासा का तूफान स्थिर हो रहा था। डाक्टर हसन की आँखों में विश्वास, स्नेह और सचाई की मूक अभिव्यक्ति विहँस रही थी। दोनों चुप थे—दोनों खोये हुए-से—डूबे हुए-से। क्षण-भर बाद सरोज ने अपनी आँख झुका लीं। डाक्टर हसन बाहर चले आए। उन्होंने देखा—अचला और योगेन्द्र लाइब्रेरी से कुछ हटकर एक पेड़ के नीचे शाम के धुँधल के में घुले-मिले जा रहे थे—दूर पर कोई किसान नचारी गा रहा था—'चलु सखी देखन अलई बरिअतियाँ हे।'··· ··· ···और आकाशके तारे लुक-छिप कर रहे थे, जैसे आँखें मल-मलकर कुछ देखने का अभिनय कर रहे हों। डाक्टर हसन ने आँखें घुमाकर दूर-दूर तक देखा—अंधकार घना होता जा रहा था, चेतना निस्पन्द-सी होती जा रही थी, खामोशी के पर खुलते जा रहे थे।

: ११ :

सबेरा हुआ। ठण्ड से सिकुड़ते-काँपते गरीब खेतिहरों की देह में सूरज की पहली किरण ने जान फूँक दी। दूध दुहने के धों-धाँ-धों-धाँ··· ··· ··· शब्द से बथान चहक उठा—बछड़े चौकड़ी भरने लगे और दूर-पास से आती हुई आवाजों से गाँव-घर मुखरित हो उठे।

डाक्टर हसन अपने बिस्तर पर बैठे-बैठे चाय पी रहे थे कि अचला आ पहुँची। उसे देखते ही डाक्टर हसन चौंक उठे। अचला की आँखें लाल और सूजी हुई थीं, उसके बाल बिखरे-बिखरे थे, उसके चेहरे पर थकान और परेशानी की रेखाएँ उभर आई थीं और वह शून्य दृष्टि से डाक्टर हसन को देख रही थी।

"क्यों—खैरियत तो है ?"—डाक्टर हसन ने चाय का प्याला मेज पर रखते हुए पूछा। अचला अपलक दृष्टि से डाक्टर हसन को देखती रही। लग रहा था जैसे उसमें कोई गति ही नहीं हो। बावली-सी वह देखती भर रही। डाक्टर हसन ने चिंतातुर होकर पूछा—"अभी कहाँ से आ रही हैं आप ?"

"मुझे कोई जहर दे दीजिए डाक्टर साहब। मैं·····।" और बिना पूरी बात कहे वह फफककर रोने लगी।

डाक्टर हसन घबरा-से गए। बिस्तर से उठकर वह अचला के पास खड़े हो गए और बहुत ही प्यार से बोले—"बात तो बताइए। रोने से क्या फायदा ?"

"जोगी जी को मैं इतना कायर नहीं समझती थी। वह·····वह कहते हैं कि·····कि तुम अपने पिता के साथ चली जाओ·····मैं कैसे चली जाऊँ डाक्टर साहब ? मैंने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि हम लोग कभी अलग भी रहेंगे·····!" अचला ने तलहथी से अपनी आँखें बन्द कर लीं।

डाक्टर हसन उसके सिर पर हाथ रखे खड़े रहे। अचला सुबकती रही। डाक्टर हसन कुछ सोच नहीं पा रहे थे। ऐसे मरीज से उनका कभी सामना भी नहीं हुआ था।

"मैं कभी नहीं जाऊँगी डाक्टर साहब।" क्रोध से अचला की आवाज भरभरा उठी।

"आपको अपने पिताजी के साथ अवश्य जाना चाहिए।" डाक्टर हसन ने निश्चयात्मक ढंग से कहा। अचला अपनी आँखों पर से हथेली हटाकर डाक्टर हसन की ओर देखने लगी—जैसे डाक्टर हसन को पहचानने की कोशिश कर रही हो। डाक्टर हसन के चेहरे पर स्निग्धता बिछल रही थी। उन्होंने अपनी बात दुहराई—"हाँ, आप अपने पिता के साथ चली जाइये। जोगी जी मजबूर हैं। वह आपको धोखा नहीं देंगे,—उन पर विश्वास रखिए। प्रेम और वास्तविकता दो चीजें हैं और शुरू-शुरू में वास्तविकता ही आगे रहती है।"

"और वास्तविकता यह है कि आप मुसलमान हैं और अचला हिन्दू!" अचला और डाक्टर हसन दोनों चौंक पड़े। सामने राम-बाबू खड़े थे।

डाक्टर हसन अचला के पास ही खड़े-खड़े रामबाबू की ओर देखते रहे। रामबाबू की धृष्टता और हिम्मत पर वह दंग थे। डाक्टर हसन यह सोचकर परेशान हो रहे थे कि—'यह कम्बख्त ख्वामख्वाह हम लोगों के पीछे सी. आई. डी. की तरह क्यों पड़ा है—'और उसकी निरर्थक लगन पर उन्हें हँसी आ रही थी।

रामबाबू निकट आ गए। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—

"यही वास्तविकता सबको परेशान करती है डाक्टर साहब।··· कोई सुलह नहीं कर पाता—कोई शादी नहीं कर पाता कोई·····।"

"आप कृपया मेरे घर से बाहर हो जाइये।" डाक्टर हसन ने आहिस्ता से कहा।

"आपका घर?—होगा। लेकिन मैं तो यह पूछने आया हूँ कि

आखिर कब तक यह महात्मापन का नकाब चढ़ाए रहियेगा ? इस तरह लुक-छिपकर मिलना, एक बेवकूफ लड़की को अपने चंगुल में फँसाये रखना और दूसरों को सचाई और धर्म की राह चलने का ढोंगपूर्ण उपदेश देना आखिर कब तक चलेगा ?"

अचला जो अब तक चुपचाप बैठी थी—अचानक ही उठ खड़ी हुई। उसकी आँखों से आँसू सूख गए। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उसने रामबाबू को लाल-लाल आँखों से देखते हुए कहा—

"आपको शर्म नहीं आती कि दूसरों के घर में चोर की तरह घुस आते हैं ? आप यही जानना चाहते हैं न कि मेरा प्रेम कैसा है और किससे है ?··· ··· तो कान खोलकर सुन लीजिए। मेरा प्रेम और सम्बन्ध डाक्टर हसन से नहीं; आपक··· ।"

"अचला !" डाक्टर हसन ने डपट दिया। अचला चुप हो रही।

डाक्टर हसन फिर रामबाबू से शांतिपूर्वक बोले—

"अच्छा हो कि भविष्य में आप मेरे घर में कभी भी पैर न रखें। जाइए।"

रामबाबू टस-से-मस नहीं हुए। वहीं खड़े रहे और बोले—"हम लोग इस गाँव के बाशिन्दे हैं। अपने गाँव में अधर्म, व्यभिचार और पाप कभी न होने देंगे। और अभी एक-आध घण्टे में फैसला हो जाएगा कि मैं आपके घर में पैर नहीं रख सकता या आप इस गाँव में नहीं रह सकते।"

"अच्छी बात है। मैं आपका गाँव छोड़ दूँगा। फिलहाल आप मेरे घर से तशरीफ ले जाइए।"—डाक्टर हसन ने आत्म-विश्वास से कहा।

रामबाबू चीख उठे—"आपकी लाश यहाँ से जाएगी।"

"आप व्यर्थ ही चीख रहे हैं।"—डाक्टर हसन ने शांत स्वर में कहा।

रामबाबू की देह में आग लग गई—"तुम्हें बोलते शर्म भी नहीं आती।"

डाक्टर हसन इतमीनान से घूमकर मेज के पास आये और झुककर सिगरेट उठाने लगे। डाक्टर हसन की निश्चल मुद्रा देखकर रामबाबू का क्रोध बढ़ता जा रहा था। वह अब गालियों पर उतर आये—"हरामी, ढोंगी··· मुसलमान होकर हिन्दुओं की बेटियों पर डोरे डालता है सा ··· !"

अभी रामबाबू पूरी बात भी नहीं कह पाये थे कि किसी के भयङ्कर प्रहार से वह चीख उठे। अचला के मुँह से भी एक हल्की-सी चीख निकल गई। डाक्टर हसन ने चौंककर देखा— निरसू मुँह के बल गिरे रामबाबू की बाँह पकड़कर बेरहमी से उठा रहा है। डाक्टर हसन जब तक वहाँ पहुँचें···पहुँचें तब तक निरसू का भरपूर झापड़ रामबाबू के गाल पर पड़ चुका था। डाक्टर हसन ने निरसू को डाटकर अलग किया। रामबाबू अर्द्ध-मूर्च्छित-से हो रहे थे। डाक्टर हसन ने अचला को इशारे से पास बुलाया। दोनों ने रामबाबू को सहारा देकर कुर्सी पर बैठा दिया।

"निरसू ठाकुर, यह आपने अच्छा नहीं किया।"—डाक्टर हसन ने भर्त्सना के स्वर में कहा।

निरसू ठाकुर के क्रोध का पारा अब भी चढ़ा हुआ था। उसने डाक्टर हसन की क्षमाशीलता से ऊबकर कहा—"सबको अपनी-अपनी राह चलने का अधिकार है—यह बात आप ही तो कहा करते हैं। फिर मेरी राह और ढंग को खराब क्यों समझते हैं ? आप अपनी राह जाइये और मैं अपनी राह जाऊँगा।"

"ठीक है। आपको अपनी राह जाने का अधिकार है, लेकिन वह राह इस घर से शुरू नहीं होती है"—डाक्टर हसन ने चिढ़कर कहा।

लेकिन निरसू ने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वह दरवाजे की ओर देख रहा था। सात-आठ आदमी बड़ी तेजी के साथ डाक्टर हसन के घर की ओर बढ़े आ रहे थे और उन लोगों को जोर-जोर से समझाते हुए आगे-आगे नेताजी चल रहे थे। निरसू ठाकुर

दरवाजे के बाहर आकर खड़ा हो गया। उसने देखा—गाँव के काफी लोग लपके चले आ रहे थे।

निरसू ठाकुर दैत्य की तरह दरवाजे पर खड़ा था। उसे देखते ही नेताजी की तेज रफ्तार कम हो गई। लोगों ने निरसू ठाकुर को देखते ही बातें करना भी बन्द कर दिया।

"कहो माधो क्या देखने आये हो ?"—निरसू ने कड़ककर पूछा। नेताजी की सिट्टी-पिट्टी गुम ! "बोलते क्यों नहीं ? क्या हो गया तुम्हारे जोश को ? ··· और तुम लोग भी इसके बहकाने में आ गए हो ?" निरसू ने इधर-उधर खड़े गाँव के जवानों की ओर देखकर कहा "यह तो राम का कुत्ता है और राम शैतान है। अपने-जैसा ही सबको समझता है ! लेकिन तुम लोगों की क्या अक्ल मारी गई कि डाक्टर साहब के घर पर हमला करने पहुँच गए ? ··· ··· बोलते क्यों नहीं ? क्या इसीलिए अखाड़े की पूजा की थी ? जुल्मी का साथ देने के लिए ही मेरा साथ किया था ?"···सब-के-सब सिर झुकाये खड़े थे। उसी समय रामबाबू बाहर निकले और सिर झुकाये अपने घर की ओर चलते चले गए। लोग कुछ देर अवाक् देखते रहे और फिर गाँव की ओर मुड़ गए।

जब सब लोग कुछ दूर चले गए तब निरसू ठाकुर भीतर चला आया। डाक्टर साहब अपने बिस्तर पर अधलेटे-से बैठे थे और अचला एक कुर्सी पर बैठी ग्लानि और कौतूहल के भाव से दरवाजे की ओर देख रही थी।

"बैठो निरसू।" डाक्टर हसन ने स्नेह से कहा। निरसू वहीं एक कुर्सी पर बैठ गया।

"तुम व्यर्थ चले आए।" डाक्टर हसन बोल उठे।

"क्यों ?"

"यहाँ वालों ने तुम्हें एक चोरी में फँसा दिया है। जिस रात तुम यहाँ से गये, उसी रात रघूबाबू के यहाँ चोरी हो गई। पुलिस

तुम्हारी खोज कर रही है।"

निरसू के चेहरे पर तरस का भाव खिल उठा। वह पीछे झुककर पैरों को हिलाता हुआ बोला—"इन गाँव वालों की किस्मत ही खराब है तो मैं क्या करूँ ?"

डाक्टर हसन ने आश्चर्य और प्रश्न-सूचक मुद्रा से निरसू की ओर देखा। निरसू मुस्कराता हुआ बोला—"आप लोगों को तो मालूम ही होगा कि जिस रात मैं यहाँ से चला उसी रात एक गाड़ी उलट गई थी। संयोग से मैं उसी गाड़ी से जा रहा था। मुझे भी काफी चोट आई और कई तक छपरा अस्पताल में पड़ा था।"

डाक्टर हसन और अचला के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ पड़ी। डाक्टर हसन भावावेश को रोकते हुए बोले—"फिर तो बिलकुल ठीक है। आज ही थाने चलकर मैं तुम्हारी जमानत ले लेता हूँ।"

"अब तो ये गाँव वाले खूब मूर्ख बनेंगे।"—अचला ने कहा।

निरसू उठकर टहलने लगा। अचला और डाक्टर अपनी विजय पर बहुत खुश थे। लेकिन निरसू के दिल में तूफान उठ रहा था। प्रतिकार, हिंसा, नफरत और आक्रोश की टकराहट से उसका दिमाग झनझना रहा था। वह मन-ही-मन अपने अपराध की तलाश कर रहा था जिसके चलते गाँव वाले उसके पीछे हाथ धोकर पड़े थे। वह सोच रहा था कि यदि गाड़ी नहीं उलटती या वह मामा के यहाँ जाने की यात्रा ही नहीं करता, तो क्या होता ? फिर सचाई कैसे प्रकट होती ? ··· ··· और वह किसी नतीजे पर पहुँच नहीं पा रहा था। डाक्टर हसन नहाने-धोने अन्दर चले गए थे।

निरसू चहलकदमी कर रहा था कि अचला बोल उठी—"मैं यहाँ से जा रही हूँ निरसू काका।"

"एं !!"—निरसू चौंक उठा।

"बाबूजी का तबादला हो गया। कल ही हम लोगों को यहाँ से चल देना है।"—अचला दीनता और करुणा की प्रतीक हो रही थी।

निरसू पसीज उठा। वह अपना दुःख भूल गया। उसने बड़े ही सीधे ढंग से पूछ लिया—"फिर आपका क्या होगा ? जोगी क्या कहता है ?"

अचला ने सिर झुका लिया। बोली कुछ भी नहीं। निरसू क्षणभर खड़ा-खड़ा अचला को देखता रहा और फिर चहल-कदमी करने लगा।

अचला ने देखा—सूरज की भरपूर रोशनी खिड़की की राह कोठरी में आ रही है, सुबह का धुँधलका फटकर बिखर चुका है और कोठरी के कोनों में अंधकार की छाया काँप रही है।

निरसू चहल-कदमी करता रहा, अचला दीनता की-संवेदना की प्रतिमूर्ति-सी चुप-चाप बैठी रही।

: १२ :

और अचला चली गई। योगेन्द्र अपनी बेचैनी को अपने मन में दाबकर ऐंठता रह गया। वह रो भी नहीं पाया। स्टेशन पर गाँव के बहुत-से लोग डाक-बाबू को विदा करने गए थे। रघू बाबू और रामबाबू भी वहाँ उपस्थित थे, लेकिन उन लोगों की नजर डाक्टर हसन और अचला पर मँडरा रही थी।·····योगेन्द्र लाइब्रेरी में एक चौकी पर लेटा हुआ ताजे-बासी संस्मरण के आघात से छटपटा रहा था···।

'स्टेशन पर अचला उसे देख रही थी···उसकी आँखें गीली हो रही थीं, अनवरत हिचकी से उसकी देह काँप रही थी···और वह डाक्टर हसन की छाती से लगकर फफक उठी, लेकिन मैं रो भी नहीं पाया···कायरता और कमजोरी ने मेरे सत्य का गला घोट दिया··· और मेरे पिता और भाई डाक्टर हसन को जलती आँखों से घूर रहे थे···यही वह जगह है···जहाँ 'वह' मरीज था···यहाँ 'वह'····· और वहाँ सरोज ···और अचला इन जगहों पर चहकती फिरती थी।

'''उसकी चाल'''उसकी बोली'''उसकी हँसी'''उसकी चितवन''' कुछ नहीं'''सब शेष हो गया'''मेरा सत्य हा स्वप्न बन गया और अब मैं बुजदिल की तरह जिन्दा हूँ'''पड़ा हूँ'''।'—योगेन्द्र आज तीन रोज से लाइब्रेरी में पड़ा था। न खाना—न पीना, न किसी से भेंट-मुलाकात —बस पड़ा था। कोई कुछ पूछता तो तबीयत खराब होने का बहाना कर देता—लोग दवा आदि की बाबत कुछ सलाह-मशविरा देकर चले जाते।

योगेन्द्र ने करवट बदलकर देखा—सामने के फैले हुए खेत में दूर पर बकरियों की टोली घास चर रही थी। एक छोटा-सा अधनंगा चरवाहा पेड़ के सहारे बैठा बाँस की रद्दी बाँसुरी फूँक रहा था, जिसकी बेसुरी तान से किसी लोक-गीत में रचित विरह-वेदना की चीख वातावरण में अनुराग उत्पन्न कर रही थी। दूर पर गाँव के छोटे-बड़े घर—कुछ खपरैल, कछ झोंपड़ी और कुछ ईंट के बेडौल मकान—चारों ओर फैली हुई ठंड की धूप, पेड़ों की छोटी-छोटी छाया,—कहीं चिड़ियों की उछल-कूद तो कहीं घास छीलती हुई घसियारिन !—लेकिन योगेन्द्र की आँखें दूर-दूर से लौट आतीं। उसे लग रहा था कि कहीं कुछ नहीं है—सब उजड़ गया—सब मिट गया।

"कहिए, किस खयाल में मुब्तिला हैं ?"—डाक्टर हसन ने योगेन्द्र को चौंका दिया। वह झेंप मिटाने के लिए सकपका कर उठ खड़ा हुआ और हँसने का असफल प्रयास करने लगा।

"चलिए—ग्यारह बजे की गाड़ी पकड़नी है।" डाक्टर हसन ने हँसते हुए कहा।

योगेन्द्र पूछना ही चाह रहा था, 'कहाँ जाना है'— कि उसकी नजर ठाकुर निरसू पर पड़ी और वह बहुत बुरी तरह सकपका कर बोला—"ओह आज निरसू काका की तारीख है न ? अभी चलता हूँ। बस जरा कुर्ता पहन लूँ।" और वह जल्दी-जल्दी वहीं दीवार से टँगा कुर्ता उतारकर पहनता हुआ बोला—"मैं तो बिलकुल ही भूल गया।

था। आजकल तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती, चलिए।"

और सब-के-सब स्टेशन की ओर चल दिए। रघूबाबू और राम-बाबू पहले ही स्टेशन पहुँच चुके थे। योगेन्द्र को डाक्टर हसन और निरसू के साथ देखकर रघूबाबू क्रोध से काँपने लगे, लेकिन प्लेटफार्म पर बहुत-से लोगों को देखकर चुप लगा गए। जब तक गाड़ी नहीं आई—रघूबाबू अपनी छोटी-छोटी आँखों से योगेन्द्र को और डाक्टर हसन को घूरते रहे और गाड़ी आने पर दोनों दल अलग-अलग डिब्बों में सवार हो गए।

निरसू ठाकुर एक दर्शक की तरह अपने मुकदमे में शामिल हुआ। जो कुछ उससे पूछा गया उसने ठीक-ठीक बता दिया। उसे निर्दोष सिद्ध करने के लिए अस्पताल का सर्टिफिकेट पर्याप्त था। हाकिम ने निरसू ठाकुर को निर्दोष घोषित कर दिया। लेकिन निरसू ठाकुर के चेहरे पर हर्ष-विषाद के कोई भाव नहीं थे। उसकी आँखें अजीब ढंग से चमक रही थीं। रह-रहकर उसके दाँत कट-कटा उठते और उसके दोनों कल्लों की ऊपरी सतह उभर आती। वह शून्य दृष्टि से सबोंको देख रहा था, जैसे वह किसी को भी नहीं देख रहा हो।...और सब-के-सब वापस सुगढ़िया गाँव लौट आए—बिना कुछ पाये—बिना कुछ गँवाये। लेकिन निरसू ठाकुर बहुत-कुछ पाकर—बहुत-कुछ गँवाकर लौटा। उसने आज तक कोई जुर्म नहीं किया था, चोरी नहीं की थी, डाका नहीं डाला था और तब उसे चोर, बदमाश और डाकू समझा जाता रहा। निरसू ठाकुर का हिंस्र भाव जागृत हो उठा, अपनी शक्ति-सामर्थ्य के प्रति वह चेतन हो उठा, अपने अतीत के प्रति उसमें घृणा, ग्लानि और विक्षोभ उत्पन्न हो उठा और भविष्य की भयंकर राह पर बढ़ चलने की सुदृढ़ भावना से वह गंभीर हो उठा। अचानक ही उसके चेहरे की रेखाएँ बदल गईं, उसके हाव-भाव बदल गए, उसका आकर्षण बदल गया, उसकी दृष्टि बदल गई। उसने सोचा—

'समाज पत्थर है—इसे लोहे से काटना होगा, आदमी जानवर है

इसे चाबुक से राह पर लाना होगा, समय में पहचान का माद्दा नहीं—इसकी आँखों में उँगली डालकर पहचान करना होगा और व्यवस्था सड़ गई है—इसके लिए कब्र खोदनी होगी।'

योगेन्द्र सोच रहा था—

'समाज मिट्टी का लोंदा है—इसे कलात्मक ढंग से गढ़ना होगा, आदमी चेतना खो बैठा है—इसमें ज्ञान और शक्ति की भावना पैदा करनी होगी, समय बदलने वाला है—इसे अपने अनुकूल ढालना होगा और व्यवस्था सड़ गई है—नई कोंपल लगानी होगी।'

रघूबाबू सोच रहे थे—'घनघोर कलिकाल आ गया है।'

डाक्टर हसन की अन्तरात्मा कह रही थी—'सत्य की हमेशा ही विजय होती है।'

जब सब लोग अपने स्टेशन पर उतरे तो रात हो चुकी थी। स्टेशन से बाहर आकर डाक्टर हसन ने निरसू से कुछ कहना चाहा, लेकिन निरसू ढूँढ़ने पर भी नहीं मिला। डाक्टर हसन ने जल्दी से कहा—"कहीं गाड़ी में ही तो नहीं रह गए। जरा दौड़कर देखिए तो जोगीजी!"

योगेन्द्र लपककर प्लेटफार्म पर जा पहुँचे, लेकिन तब तक गाड़ी खुल चुकी थी। योगेन्द्र ने चारों ओर जमे अंधकार में आँखें गाड़कर देखा, निरसू ठाकुर का कहीं भी पता नहीं था। सिगनल के पास जोर की सीटी देता हुआ इंजिन भागा जा रहा था—प्लेटफार्म के दोनों सिरों पर दो बत्तियाँ भुक-भुककर टिमटिमा रही थीं, स्टेशन में छोटा बाबू टेलीफोन पर जोर-जोर से चीख रहा था.....

योगेन्द्र असमर्थता की एक लम्बी साँस खींचकर स्टेशन के बाहर निकल आया।

"नहीं मिले?"—डाक्टर हसन ने पूछा।

"जी नहीं।"

"देखते-देखते कहाँ गायब हो गए?" डाक्टर हसन ने अविश्वास

से चारों ओर नजर दौड़ाते हुए कहा।

"पता नहीं। इस अंधकार में तो ढूँढ़ना भी मुश्किल है।"—योगेन्द्र ने कहा और तब दोनों अपने घर की ओर चल पड़े गुम-सुम! अंधकार घना होता गया—इतना अधिक घना कि राह भी ओझल हो गई।

: १३ :

योगेन्द्र अब लाइब्रेरी में ही रहने लगा। दिन-भर वह गाँव के गरीब बच्चों को बटोरकर पढ़ाया करता और रात को बूढ़े-जवान खेतिहर मजदूरों को साक्षर बनाने की कोशिश करता। उसे उसका एकाकीपन डसने लगा था। उसने महसूस किया कि अगर कुछ दिन और वह अकेले में बैठ-बैठकर घुटता रहा तो पागल हो जायगा। सुबह आठ बजे से लेकर रात ग्यारह बजे तक वह पढ़ने-पढ़ाने में ही व्यस्त रहता और उसके बाद थककर सो जाता।

दोपहर के बारह बज रहे होंगे। अभी-अभी उसने लड़कों को टफन की छुट्टी दी थी और स्वयं एक आरामकुर्सी पर आँखें बन्द किये बैठा था। न जाने वह क्या सोच रहा था कि उसके मुख-मंडल पर तरह-तरह के भाव-अनुभाव बन-बिगड़ रहे थे और हल्की-हल्की लहरों की तरह रेखाएँ आ-जा रही थीं। ऐसा लग रहा था कि वह सुध-बुध खोकर अर्ध-सुषुप्तावस्था में पड़ा है, कि अचानक अपने भाई रामबाबू के सम्बोधन से वह चौंककर चेतन हो बैठा। रामबाबू कह रहे थे—

"ए जोगी ·····जोगी, उठो-जरा डाक्टर साहब को बुलाकर घर ले आओ! जल्दी!"

"क्यों क्या बात है ?"—योगेन्द्र ने अनासक्त भाव से पूछा।

'तुम्हारी बड़ी भाभी को बहुत जोरों से दर्द हो रहा है। जल्दी करो !"

"आप स्वयं क्यों नहीं चले जाते ?"

"मुझसे डाक्टर साहब नाराज हैं। उन्होंने अपने घर पर आने से मुझे मना कर रखा है।"

"डाक्टर साहब इन छोटी-छोटी बातों को याद नहीं रखते। आप स्वयं जाकर उन्हें बुला लाएँ तो अच्छा रहेगा। इस तरह आप डाक्टर साहब को पहचान भी सकेंगे।"—योगेन्द्र ने बिना किसी जल्दी के कहा।

रामबाबू तड़प उठे—"तुम खड़े-खड़े लेक्चर झाड़ोगे या काम भी करोगे ?"

"अपना काम तो मैं कर ही रहा हूँ। देखते नहीं, बच्चे सब टिफिन मना रहे हैं। लेकिन आप अपनी जिम्मेवारी दूसरे के माथे डाल देना चाहते हैं ...।"

"तुम बहुत बदतमीज हो गए हो।"

"आप जैसा समझें।"—योगेन्द्र निश्चल भाव से बोला।

रामबाबू क्रोध से एठ गये, फिर भी स्वार्थवश आग्रह के स्वर में बोले—"जा भइया ! तुम्हारी भाभी को बच्चा होने वाला है। वह दर्द से दम तोड़ रही है।"

योगेन्द्र पसीज उठा। बच्चों को बुलाकर उसने छुट्टी की घोषणा कर दी। बच्चे उल्लास से कूदते-फाँदते भाग खड़े हुए और योगेन्द्र डाक्टर हसन को बुलाने चल पड़ा।

डाक्टर हसन को देखते ही रामबाबू ने झुककर नमस्कार किया। आज, शादी के सत्रह वर्ष बाद, उनकी पत्नी को पहली सन्तान होने जा रही थी। वह भीतर से जितने प्रसन्न थे, ऊपर से उतने ही घबराये हुए थे। डाक्टर हसन को देखते ही वह ग्लानि से झुक

गए। घर के भीतर पहुँचते ही डाक्टर हसन की नजर सरोज पर जा पड़ी। सरोज बरामदे में एक खम्भे के सहारे खड़ी थी। वह डाक्टर हसन को निर्निमेष नयनों से देख रही थी। रामबाबू की नजर भी सरोज पर जा पड़ी। उनके कलेजे पर साँप लोट गया, लेकिन अभी पिता बनने की लालसा में वह बेसुध हो रहे थे।

डाक्टर हसन ने प्रसूती की परीक्षा ली। ज्यों-ज्यों वह परीक्षा करते जाते उनका चेहरा गम्भीर होता जाता। उन्होंने कान में आला लगाकर प्रसूती के शरीर की परीक्षा लेनी शुरू ही की थी कि किसी औरत की कर्कश डाट की आवाज और फिर धुम-धुमाक-धुम-धुमाक-धुनाक···की ध्वनि से घर-आँगन गूँज उठा। डाक्टर हसन ने कान से आला निकाल लिया और आँगन की ओर घूमकर आश्चर्य से देखने-सुनने लगे। डाट-फटकार के साथ-साथ लात-मुक्के की वर्षा भी जारी थी और तब किसी स्त्री के मुँह से निकलती हुई चीख की ध्वनि भी स्पष्ट हो उठी। डाक्टर हसन समझ गए कि किस अभागिन पर यह मार पड़ रही है। वह घर से बाहर निकल आए। उन्होंने देखा कि सरोज दीवार पकड़कर बैठी कराह रही है और वहीं उसकी सास चंडी का रूप धारण किये, दबी जबान से गाली बके जा रही है—"डायन कहीं की—भतार को देखने के लिए यहाँ खड़ी थी। निर्लज्ज! चुड़ैल! अब क्या घर-भर को खाकर मरेगी·····?"

"क्या आप लोग तीन-तीन जान एक साथ लेना चाहते है?" डाक्टर हसन ने क्रोध पीते हुए शान्त स्वर में कहा।

राम बाबू—जो कुछ दूर पर खड़े तमाशा देख रहे थे—दौड़कर अपनी माँ को डपटने लगे—"तुम्हारा भी अजीब स्वभाव है। देखती नहीं कि घर में क्या हो रहा है?···पागलों की तरह शोर करने लगती हैं।"

इतना कहकर रामबाबू डाक्टर हसन के पास आ पहुँचे—"कैसी

हालत है डाक्टर साहब ?"

"अच्छी हालत नहीं है। बच्चा उल्टा है। ऑपरेशन करना होगा। जच्चा के बचने की उम्मीद कम है। इन्हें कब से दर्द हो रहा है ?"—डाक्टर हसन के स्वर में क्रोध और सहानुभूति का सम्मिलन हो रहा था।

"परसों शाम से।" रामबाबू ने डरते हुए कहा।

डाक्टर हसन ने रामबाबू को घूरकर देखते हुए कहा—"आप लोग बिलकुल जंगली हैं।" और इतना कहकर डाक्टर हसन बाहर दालान पर चले आए।

रामबाबू भी उनके पीछे-पीछे भागते हुए आ पहुँचे।—"तब ?—आपरेशन कब कीजिएगा डाक्टर साहब ?" रामबाबू ने अधीर होकर पूछा।

"किसका 'आपरेशन' होगा ?"—रघूबाबू ने दंभी की तरह पूछा।

"रामबाबू की पत्नी का !"—डाक्टर हसन ने जवाब दिया और योगेन्द्र को ढूँढने लगे। योगेन्द्र वहाँ से कब का चला गया था।

"जोगी जी तो हैं नहीं। फिर ?·····अच्छा ठीक है—मैं स्वयं दवाखाने से सामान ले आता हूँ। रामबाबू ! आप भी मेरे साथ आइए !"

"राम – श्री सीताराम—हे भगवान् तुम्हारी लीला अपरम्पार है·····होइहै वही जो राम रचि राखा·····श्री सीता राम !"—रघूबाबू ऐसे स्वर में राम नाम जप रहे थे जिस स्वर में ठंड के मौसम में गंगा-स्नान करते समय भक्त लोग जपा करते हैं।

जिस कोठरी में रामबाबू की पत्नी पड़ी छटपटा रही थी, उस घर की हुलिया अजीब थी—ऊपर छत के पास दीवार में एक छोटी-सी खिड़की, घर में घुप्प अन्धकार, अलाव के धुएँ से बढ़ती हुई घुटन, यत्र-तत्र पानी गिरा हुआ और चारों ओर सामान के रूप में

गंदगी फैली हुई·····।

डाक्टर हसन ने अपना पैट्रोमेक्स मँगवाकर जला दिया। वह अकेले थे और ऑपरेशन का पूरा सामान भी नहीं था। लेकिन फिर भी कुछ-न-कुछ तो करना ही था। ऑपरेशन का नाम सुनते ही पूरे घर में भयंकर खलबली मच गई।

डाक्टर हसन ने रामबाबू को बुलाकर कहा—"मेरी सहायता करने के लिए यहाँ कौन रहेगा ?"

"माँ को भेज दूँ ?"

"हाँ-हाँ भेज दीजिए।" डा० हसन ने सहज स्वर में कह दिया।

लेकिन रामबाबू के लाख समझाने-बुझाने पर भी माता जी तैयार नहीं हुईं। डर के मारे उसके हाथ-पैर फूल गए। आखिर सरोज को भेज दिया गया। सरोज अपना सारा दुःख भूलकर सेवा में जुट गई। बाहर लोग साँस रोके प्रतीक्षा में खड़े थे, कोठरी के भीतर से किसी भी तरह की आवाज नहीं आ रही थी। कभी-कभी चाकू आदि रखे जाने की आवाज आती—बाहर खड़े लोगों की देह झनझना उठती, कभी डा० हसन कुछ भुनभुनाते और लोगों के रोएँ खड़े हो जाते। बाहर दालान में रघूबाबू रामायण पढ़े जा रहे थे। लोगों की अच्छी-खासी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। गाँव वालों के लिए यह एक नये अनुभव की बात थी।

काफी प्रतीक्षा के बाद नवजात शिशु के क्रन्दन से पूरा घर गूँज उठा। रामबाबू अपने उल्लास को रोक नहीं पा रहे थे।

रामबाबू की माँ मनौती मानने लगीं—"हे दीनानाथ (सूर्य) बच्चा बच जायेगा तो पाँच सेर दूध चढ़ाऊँगी।"

और आखिर डा० हसन बाहर निकले। सब लोग उत्सुकता से उनकी ओर देख रहे थे।

"बेटा है। बच जायेगा, लेकिन जच्चा पर अभी खतरा है। एक घंटा बाद मैं फिर आऊँगा। तब तक जच्चा को चुप-चाप सोने

दीजिए।" इतना कहकर डा० हसन घर से बाहर चले गए। रामबाबू भी उनके पीछे-पीछे आये।

"मैं बहुत-बहुत आभारी हूँ डा० साहब। यह उपकार मैं कभी भी नहीं भूल सकता।" रामबाबू गद्‌गद् कंठ से बोले।

डा० हसन ने मुस्कराकर रामबाबू की ओर देखा और फिर चलते बने।

डा० हसन जब कुछ दूर चले गए तब रघूबाबू बोले—"मारने वाले से जिलाने वाला बड़ा है राम।"

"नहीं बाबू जी, आज सचमुच मैं डा० हसन का लोहा मान गया। बड़ा क्षमाशील और उदार आदमी है।"

"क्या तू समझता है कि डा० हसन ने ही जच्चा-बच्चा को बचा लिया। हुँह·····बेवकूफ कहीं का। अरे यह सब श्री सीताराम की कृपा है। आठ घंटे से लगातार रामायण पढ़ता जा रहा हूँ। वह मियाँ डा० क्या कर सकता है?" इतना कहकर रघूबाबू ने एक लोंदा थूक वहीं बरामदे की दीवार पर फेंक दिया।

रामबाबू अपने दोनों हाथ पीछे की ओर बाँधे मुग्ध दृष्टि से डा० हसन को जाते देख रहे थे। शाम के इतने अँधियारे में डा० हसन के स्वच्छ धवल वस्त्र स्निग्धता के सजीव चित्र-से चमक रहे थे।

: १४ :

रामबाबू की पत्नी को मरे दस रोज बीत गए। लाख कोशिश करने पर भी डाक्टर हसन उसे नहीं बचा सके। और आखिर बाँझ का कलंक मिटाकर रामबाबू की पत्नी चौबीस घंटे बाद ही इस संसार से विदा हो गई। सरोज ने नवजात शिशु को कलेजे से लगा लिया। उसे

लगा जैसे यह शिशु उसीका है—अपना है। अब वह बड़े ध्यान और लगन से बच्चे की देख-भाल करने लगी। उसे हमेशा अपनी गोद में रखती, दूध पिलाती, तेल लगाती, उसका मल-मूत्र साफ करती और थपकियाँ दे-देकर, लोरियाँ गा-गाकर, उसे अपने कलेजे से सटा-कर सुलाती। रामबाबू भी निश्चिन्त हो गए।

उस रोज बच्चे की तबियत कुछ खराब हो गयी थी। डाक्टर हसन आये। बच्चे को देखकर बोले—"घबराने की कोई बात नहीं है। मामूली बुखार है। ठीक हो जायेगा।"

"और कहीं बुखार बढ़ गया तो ?"—सरोज ने सहज स्नेह से आतुर होकर पूछा।

डाक्टर हसन ने मुस्कराकर भरोसा दिला दिया। सरोज मातृ-स्नेह से भरी आँखों से बच्चे को निहारती हुई उसके बालों को हल्के-हल्के सँवारती रही।

"अब तो आपको सहारा मिल गया ?"—डाक्टर हसन ने किंचित् हँसते हुए पूछा। सरोज ने एक बार डाक्टर हसन को देखा और लाज से झुक गई।

डाक्टर हसन ने फिर चुटकी ली—"दवाखाने जाकर आपके लिए भी एक दवा भेज दूँगा।"

"मेरे लिए ?"—सरोज ने आश्चर्य से डाक्टर हसन को देखते हुए पूछा।

"हाँ, एक खुराक जहर !"

"जाइये !"

"क्यों ? अब मरने की इच्छा नहीं है क्या ?"

"इच्छा तो है, लेकिन इसे कौन पालेगा ?" सरोज ने दीनता से भीगकर कहा—"जब इसे मेरी जरूरत नहीं रहेगी तो मेरे प्राण अपने आप उड़ जायेंगे।"

डाक्टर हसन कुछ कहने ही जा रहे थे कि रामबाबू आ गए।

"ठीक तो हो जायगा ?"—रामबाबू के स्वर में आशंका स्पष्ट थी।

"अरे कुछ नहीं है।"—कहते हुए डाक्टर हसन उठ खड़े हुए। दरवाजे के बाहर दालान पर रघूबाबू टहल रहे थे।

"क्या हुआ है बच्चे को ?"—रघूबाबू ने ऐसे पूछा जैसे उनकी नजर में बात कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती।

"मामूली बुखार है। कल तक ठीक हो जायगा।" डा० हसन ने भी उसी लहजे में उत्तर दे दिया।

"अरे हाँ, बच्चों को ऐसे ही बुखार होता रहता है।"

"मैं आपके पास वैसे भी आने वाला था।"—डा० हसन ने कुछ गंभीर होकर कहा।

"क्यों कोई खास बात है क्या ?"—रघूबाबू डा० हसन के निकट आते हुए बोले।

"हाँ।"

"कहो !"

"बात यह है कि···"—डाक्टर हसन कुछ सोचने लगे, फिर बोले -"इस साल अपने यहाँ इतने जोरों की बाढ़ आई कि समझिए प्रलय ही आ गया।"

"अरे यह भी कोई कहने की बात है। हम लोग तो खत्म हो गए—मर गए। सारी फसल चौपट हो गई !"—रघूबाबू ने दुखी होकर कहा।

"चीजें भी काफी मँहगी हो गई हैं। सरकार की सहायता और समुचित कार्रवाई के बावजूद कुछ बेईमान व्यापारी अपनी चाँदी बनाने पर लगे हैं। ऐसी हालत में आप-जैसे लोग यदि खेतिहर मजदूरों की मदद नहीं करेंगे तो बेचारे बेमौत मर जायँगे।"

"इसीलिए तो मैं अपने खेत में काम करने वालों को नकद पैसे दे देता हूँ—बाकी कुछ भी नहीं रखता।" रघूबाबू ने गर्व से कहा।

डाक्टर हसन क्षण-भर रघूबाबू का मुँह ताकते रहे, फिर बोले—

"यही तो बात है जो मैं आपसे कहना चाहता था। नकद के बदले आप उन्हें अनाज देते तो बड़ा अच्छा होता और गाँव के दूसरे लोगों से भी ऐसा करने को····· ।"

"तुम पागल हो गए हो डाक्टर ?"—रघूबाबू ने बीच ही में बात काटकर जल्दी से कहा—"हम लोगों के पास अनाज है कहाँ कि खेतिहर मजदूरों को दे दिया करें। नकद में क्या खराबी है भला ?"

"लेकिन पहले तो आप लोग अनाज ही देते थे। फिर आज क्यों नहीं देते ?"

"देखो डाक्टर, हम क्या देते थे और क्या नहीं देते हैं—इस पचड़े में तुम्हें पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। तुम अपना काम देखो।"—रघूबाबू तमककर बोल उठे।

"समाज-सेवा ही तो मेरा काम है। मजदूरी में ढाई सेर अनाज या आठ आना नकद की प्रथा जब थी, उस समय अनाज काफी सस्ता था। आज आठ आने पैसे से एक मजदूर का परिवार एक शाम भी नहीं खा सकता। बहुत-से लोग मेरे पास रोते-गिड़गिड़ाते हुए आते हैं।"

"तो कुछ पैसे देकर उनकी मदद कर दो।"—रघूबाबू ने तपाक से कहा।

"लेकिन वे लोग अपना अधिकार माँगते हैं—भीख नहीं।" डाक्टर हसन ने शांत स्वर में कहा।

"ओफफोह·····बड़े अधिकार माँगने वाले बने हैं वे लोग।"

"इसमें आश्चर्य और व्यंग की तो कोई बात नहीं है। सबका जीने का अधिकार है।"

"तो उन लोगों से कह दो कि हम लोग जो ठीक समझते हैं—देते रहेंगे। उनकी समझ में जो आये करें।"

"इसीलिए तो मैं आपसे आग्रह करने आया हूँ। जमाना बदल रहा है। सभी समस्याओं को शांति से निपटा लेना ही बुद्धिमानी है।"

"ए डाक्टर ! यह धमकी मुझे मत दो। आज पचपन साल से मैं इस गाँव में रहता हूँ; मैं जानता हूँ कि कौन कितने पानी में है ? और अधिकार माँगने वाले ऐसे-ऐसे कितने बदमाशों का सिर कुचल चुका हूँ।"

रघूबाबू की आवाज में अहंकार और क्रोध सजीव हो रहा था। डाक्टर हसन ने बात बढ़ाना ठीक नहीं समझा और दवाखाने की ओर प्रस्थान कर दिया।

दवाखाने पहुँचकर डाक्टर हसन ने देखा कि पाँच-छः गरीब खेतिहर उनकी प्रतीक्षा में बैठे हैं। डाक्टर हसन को देखते ही सब-के-सब उठ खड़े हुए। सबके चेहरे पर उत्सुकता, दीनता, भूख और मृत्यु की छाया जमी हुई थी। डाक्टर हसन ने सबको बैठने का संकेत किया और स्वयं अपनी कोठरी में पहुँचते ही उन्होंने आश्चर्य से देखा कि निरसू ठाकुर एक कुर्सी पर गम्भीर मुद्रा में बैठा है।

"अरे आप ? कहाँ रहे इतने दिन ?"

"बस इधर-उधर घूमता रहता हूँ। आपसे मिलने चला आया।" निरसू ठाकुर ने विहँसते हुए कहा।

'यहीं क्यों नहीं रहते, जो इधर-उधर भटकते फिरते हो ?"

"इसलिए कि मेरी राह आपके घर से नहीं निकलती। मेरी राह तो उन भूखे और पीड़ित जानवरों के घर से निकलती है जिनके प्रतिनिधि आपके मुँह से रघू की नाहीं सुनने को बैठे हैं।"—निरसू ने सहज स्वर में कहा, किन्तु उसके चेहरे पर क्रोध और अर्थपूर्ण भाव तैर रहे थे।

डाक्टर हसन ने हँसकर कहा—"फिर अपने घर पर रहो !"

"मेरा घर ?"—निरसू ने स्वगत भाषण के ढंग पर उत्तर दिया—"मेरा घर तो उसी रोज जल गया जिस रोज आग बुझाने के लिए किसी ने एक चुल्लू पानी भी नहीं दिया।"

डाक्टर हसन चुप हो रहे। उन्होंने एक सिगरेट जलाई और निरसू से यह कहकर कि—"तुम कुछ देर ठहरो, मैं जरा उन लोगों

को विदा कर आऊँ"—बाहर चले आये और रघूबाबू ने जो कुछ कहा था—सुना दिया।

खेतिहर मजदूरों की सूनी आँखें हाहाकार कर उठीं; दीनता, भूख और दुःख की ज्वाला से उनकी सूखी हड्डियाँ लहक उठीं; लेकिन असमर्थता और असहायता ने उन सबोंकी गरदन दबोच दी और वे सब जमीन की ओर देखने लगे।

एक जवान तड़प उठा—"तब तो हम लोगों की कोई भी सुनने वाला नहीं है मालिक! भगवान् भी सो गया। सेठ छेदीमल के गोदाम में अनाज के सैकड़ों बोरे पड़े है और हम लोग भूख से तड़प रहे हैं—पेट बाँधकर सोते हैं।"

"भगवान् हम लोगों की परीक्षा ले रहा है। चलो घर चलें।"—एक बूढ़े ने ढेहुनों पर हाथ का सहारा देकर उठते हुए कहा।

"तो हम लोग भी अब भगवान् के लाडलों की परीक्षा लेंगे।"—नौजवान मजदूर चीखता हुआ उठ खड़ा हुआ। डाक्टर हसन चुपचाप खड़े रहे—उन लोगों का मायूसी-क्षोभ में डूबते-उतराते जाना देखते रहे। शाम हो गई थी। चारों ओर अन्धकार व्याप गया था। गाँव में कुछ-कुछ कोलाहल हो रहा था, जिसका डूबता हुआ स्वर डाक्टर हसन के कानों में शिथिलता के भाव भर रहा था और उनकी आँखों के सामने नौजवान खेतिहर मजदूर की जलती हुई आँखें अन्धकार में जलती हुई मशाल की तरह लपटें फेंक रही थी। कुछ देर तक वह गुम-सुम खड़े रहे—वह भूल गए कि भीतर कोठरी में निरसू बैठा-बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। डाक्टर हसन ने देखा—चारों ओर अंधकार छाया है—कहीं से रोशनी आने की उम्मीद नहीं और गाँव की ये इक्की-दुक्की लालटेन वातावरण को और भयंकर बना रही हैं।..... चारों ओर प्रश्न-चिन्हों की कतार लगी है—सरोज, अचला, निरसू, खेतिहर मजदूर, डाक-बाबू.....ये सब समय के भाल पर प्रश्न-चिन्ह से टँके है और इसका उत्तर ?.....शायद उत्तर भी प्रश्न-चिन्ह

बन चुका है ! तो क्या इसका उत्तर उस नौजवान की जलती हुई आँखों से प्रकट होगा ? क्या ?·····और तभी डाक्टर हसन को निरसू की याद आई। वह जल्दी-जल्दी कोठरी में पहुँचे, लेकिन निरसू जा चुका था। न जाने क्यों डाक्टर हसन के होठों से हल्की अस्फुट हँसी निकल पड़ी !—शायद संयोग-वियोग की विचित्रता पर ही वह हँस पड़े।

आँगन में जाकर उन्होंने 'कुकर' जलाया और उसमें चावल-दाल पकने के लिए रख दिया। फिर अपने बिस्तर पर आकर लेट गए। कुकर में धीरे-धीरे खाना पकने लगा और रात धीरे-धीरे उतरने लगी।

: १५ :

रात ढलने लगी थी। चारों ओर सन्नाटा छाया था। कुत्ते और चौकीदार भी सो रहे थे। पश्चिम के आकाश में हँसुआ जैसा चाँद लटक रहा था। दूध में धोये झिलमिल, सफेद रेशे आकाश में बिखरे थे। रात की ठंड में जिन्दगी का स्पन्दन तैर रहा था। अजीब रोमानी रात थी।

सेठ छेदीमल मोटी-मुलायम रजाई के नीचे दबा हुआ सो रहा था। नींद में उसकी नाक और मुँह बहुत जोर से बोल रहे थे—'साले ने खा-खाकर पेट का हाजमा खराब कर लिया है।'—निरसू इसे घूरता हुआ बड़बड़ाया। उसने अपने बगल में खड़े नौजवान को इशारा किया और खुद सेठ के पैताने खड़ा होकर हाथ की दो-नाली बन्दूक सेठ की गरदन पर भिड़ा दी।

उस नौजवान ने सेठ को भाले की नोक से कुरेदते हुए कहा—"ऐ ! उठो—देखो कौन आया है ?"

सेठ ने आँखें खोलकर देखा तो उसके घिग्घी बँध गई।

नौजवान ने बायाँ हाथ फैलाकर कहा—

"चाबी लाओ ! जल्दी !"—सेठ ने उठने की कोशिश की, लेकिन बन्दूक की नाली का स्पर्श पाते ही सहमकर पड़ रहा। उसकी समूची देह काँप रही थी।

"चाबी कहाँ है ? घबराओ नहीं, थोड़ा रुपया ही निकालेंगे। व्यापार करने लायक चावल भी गोदाम में छोड़ दिया है····· जल्दी करो !"—नौजवान ने कड़ककर कहा।

"सि···सि···र···हा-हाने के नीचे !"·····सेठ पूरी बात कह भी नहीं पाया। नौजवान ने सिरहाने से चाबी निकाल ली। निरसू ठाकुर वहीं बन्दूक रोपे खड़ा रहा। सेठ घूर-घूरकर निरसू की ओर देख रहा था। लेकिन निरसू का सिर, मुँह, नाक-कान सब ढका था और उसने देह में पोशाक भी अजीब पहन रखी थी। इसलिए सेठ उसे बिलकुल नहीं पहचान सका।

थोड़ी ही देर में नौजवान हाथ में थैला लटकाये लौट आया। निरसू ने उसे फिर कुछ इशारा किया।

नौजवान ने अपने भाले से सेठ को खोदकर कहा—"खबरदार जो पुलिस में रपट लिखाई। और अगर तुमने किसी को पहचानने में पुलिस की मदद की तो समझ जाओ—सब लूट लेंगे और घर में आग लगाकर जिन्दा जला देंगे।"

इसके बाद उस नौजवान ने सेठ के हाथ-पैर बाँध दिए और मुँह में कपड़ा ठूँस दिया।

निरसू ने एक बार चारों ओर देखा और तब दोनों तेजी से निकल भागे। कुछ देर तक सेठ संज्ञाहीन-सा पड़ा रहा कि उसे अचानक

होश आया। वह स्वप्न नहीं देख रहा था—यह सब सच था—इसका ध्यान आते ही उसने हिल-डुलकर कपड़ा निकाल लिया और चीखने लगा। भीतर हवेली से औरतें निकल आईं। शोर-गुल सुनकर आस-पास के पड़ोसी भी आ जुटे और कुछ देर बाद तो पूरा गाँव ही इकट्ठा हो गया। लेकिन तब तक निरसू ठाकुर सदल-बल नदी के पार सेंभर के जंगल में पहुँच चुका था।

दारोगा जी आए। उन्होंने बयान लेना शुरू किया। सेठ छेदीमल ने किसी का चेहरा तो देखा नहीं था—किसका नाम बताता। गाँव में तो क्या—आस-पास के इलाके में भी ऐसे दुर्द्धर्ष डाकुओं का कोई गिरोह नहीं था। सब आश्चर्य में थे। सुबह होने पर पुलिस ने गाँव में बसने वाले आसामी और शूद्रों के घर की तलाशी ली, लेकिन कहीं-से कोई सबूत नहीं निकला। पूरा इलाका आश्चर्य और आ'क से काँप उठा।

× ×

डाक्टर हसन के पास योगेन्द्र बैठा था। दोनों खामोश थे—दोनों किसी गहन चिन्ता में डूबे हुए थे—दोनों के चेहरे पर विषाद की रेखाएँ गहरी हो रही थीं।

योगेन्द्र ने कुर्सी की पीठ पर ओठँगते हुए कहा—"नहीं डाक्टर साहब, यह काम निरसू का नहीं हो सकता।"

"निरसू के सिवा और कोई ऐसी हिम्मत नहीं कर सकता।" डाक्टर हसन ने विश्वास के साथ कहा।

"लेकिन वह तो इतना सीधा-सादा आदमी है कि ऐसी सफाई के साथ डाका डालना·····।"

"उसीके बस की बात है जोगीजी!"— डाक्टर हसन वाक्य पूरा करते हुए बोले—"मैं जानता हूँ कि इन दिनों वह कितना खतरनाक बन गया है।"

"तो ठीक है, जिस समाज ने उसे खतरनाक बनाया है, उस समाज

को अपने किये का फल भोगने दीजिए !"—योगेन्द्र ने छूटते ही कहा।

"लेकिन निरसू का क्या होगा ? वह तो अपनी जिन्दगी खराब कर रहा है ! अच्छा हो कि हम लोग उसे ढूँढ़ निकालें और सही रास्ते पर लाने की कोशिश करें। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।"—डाक्टर हसन ने निदान पर पहुँच जाने के ढंग से कहा और सिगरेट सुलगाने लगे।

"गाँव में तो काफी शोर है ! सब लोग आतंकित हैं—मन-ही-मन सभी सोचते हैं कि निरसू डाकू हो गया है, उसीने यह डाका डाला है, लेकिन डर से कोई बोलता नहीं।"

"कुछ भी हो, निरसू को सही रास्ते पर लाना ही होगा !"

"आज तक सही रास्ते पर रहकर उसने कौन सुख पाया कि आगे पा लेगा ? मैं तो समझता हूँ कि आज के समाज में ऐसे लोगों का होना स्वाभाविक ही है। और इस तरह के आतंक, खून-खराबी और लूट-पाट के बीच से ही शान्ति और व्यवस्था का अंकुर फूटेगा।"

"एक-दो निरसू ठाकुर के डाकू हो जाने से समाज अच्छी राह पर नहीं आ सकता जोगी जी ! समाज को प्रेम और शान्ति से बदलना होगा।"

"प्रेम और शान्ति का उपदेश देते-देते ईसा, बुद्ध और गांधी-जैसे कितने महापुरुष थककर चल बसे, लेकिन समाज ने उनके उपदेश को ताबीज बनाकर गले में लटका लेने के सिवा और कुछ नहीं किया।"

"इसका मतलब यह कि आप भी लूट-खसोट का समर्थन करते हैं ?" डाक्टर हसन ने आश्चर्य से देखते हुए कहा।

योगेन्द्र सकपका गया—"नहीं, ऐसी बात नहीं है। लेकिन मैं यह भी नहीं मानता कि प्रेम और शान्ति से समाज को बदला जा सकता है। समाज को बदलने के लिए संगठित होकर कोई उपाय करना होगा और वह संगठन हिंसा की राह चले या अहिंसा की राह, इसका

निश्चय समय करेगा।"

"खैर, सिद्धांत तो बहुत-से हैं। अभी निरसू ठाकुर के भयंकर काम की चर्चा हो रही थी कि उसे इस गलत रास्ते से कैसे विमुख किया जाय ? आप किसी तरह उसे ढूँढ़ लाइए तो काम बने।"

"मैं हाजिर हूँ डाक्टर साहब !" डाक्टर हसन और योगेन्द्र ने चौंककर देखा—सामने निरसू ठाकुर खड़ा था। उसके चेहरे पर वही भोलापन, वही सरल उद्दंडता काँप रही थी—उसकी आवाज में वही रूखापन ध्वनित हो रहा था—उसकी आँखों में वही सचाई चमक रही थी—जो पहले थी—जो हमेशा से थी। परिवर्तन केवल इतना हुआ था कि उसके चेहरे पर व्यंगपूर्ण-मुस्कराहट की तीक्ष्ण कँपकँपी दौड़ रही थी; जिसके चलते उसकी उपस्थिति ने वातावरण में आतंक की खामोशी पैदा कर दी।

"आओ निरसू ठाकुर—बैठो !"—डाक्टर हसन सीधे होकर बैठते हुए बोले। निरसू ठाकुर एक कुर्सी पर बैठ गया। योगेन्द्र अपलक दृष्टि से निरसू के देव-रूप को देख रहा था और पता नहीं क्यों मन-ही-मन प्रफुल्लित हो रहा था।

"आप लोग मुझसे नाराज हैं शायद !"—निरसू ने भोलेपन से कहा।

"हाँ, निरसू ! मुझे तुमसे ऐसी उम्मीद नहीं थी।"

"क्या ?"

"कि तुम डाका डालना शुरू कर दोगे ! यह बहुत बुरा काम है, इसे छोड़ दो।"—डाक्टर हसन ने दुखी होकर कहा।

निरसू सिर झुकाये क्षण-भर सोचता रहा और बोला—"डाक्टर साहब, यह रास्ता भयानक जरूर है, लेकिन खराब नहीं है। और न जाने क्यों अब भयानक कामों से ही मुझे मोह हो गया है। मैंने आदमीयत का पल्ला अभी तक नहीं छोड़ा है और न छोड़ूँगा।"

"तो क्या तुम्हारी आदमीयत यही कहती है कि·····।"

"जिसके पास ज्यादा है—उससे छीनकर अभाव में डूबे इन्सानों पर फेंक दो कि वे उबर आयें।"

"लेकिन व्यक्तिगत पैमाने पर छीनने का प्रयास करना तो चोरी है—जुर्म है।"—डाक्टर हसन ने समझाने के ढंग से कहा।

"एक आदमी पचास का अधिकार छीनकर बैठा है, सो क्या है ?"—निरसू की आँखों में नफरत छलक आई।

"संगठित रूप से उसका सामना कीजिए। डाके डाल-डालकर गरीबों में धन बाँटने से तो गरीबी दूर नहीं होगी। बल्कि वे गरीब काहिल हो जायँगे और चोरी-डकैती को ही अपना पेशा बना लेंगे।"—योगेन्द्र अपनी चुप्पी तोड़ता हुआ बोला।

निरसू ने हँसकर योगेन्द्र की ओर देखा, और बोला—"आप लोग पूरी तैयारी के साथ मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। खैर, यह बताइए कि मेहनत-मजदूरी को युगों तक पेशा बनाकर गरीबों ने क्या पाया ? आज पैंतीस वर्षों तक उपकार, सेवा, शान्ति और संतोष की राह अपनाने के बाद मुझे क्या मिला ?—उपेक्षा, धोखा, घृणा और गरीबी ?"

"लेकिन तुम्हारे डाकू बन जाने से ये सब खराबियाँ मिट तो नहीं जायँगी !" डाक्टर हसन ने निरुत्तर-सा होकर समझाने की सदिच्छा से कहा।

निरसू तनकर बैठ गया। उसके चेहरे की व्यंगमयी मुस्कराहट दीप्त हो उठी। वह बोला—"प्रतिकार तो ले लूँगा ! समाज के अगुआ को मालूम तो हो जायगा कि गरीब की धमनियों में भी गरम खून दौड़ता है। सामने भर देखने की आदत तो छूट जायगी।"

"लेकिन निरसू काका, ऐसा काम क्यों नहीं करते कि साँप भी मरे और लाठी भी नहीं टूटे ! सामने आइए, लोगों में जागृति पैदा कीजिए और एक साथ मिलकर धावा बोल दीजिए। आप जैसे पाँच-दस लगो भी हो जायँ तो पूरे जबार का काया-कल्प हो जाय। मैं भी आपके

साथ हूँ।"—योगेन्द्र ने उत्साहित होकर कहा।

निरसू जैसे तैयार बैठा था, बोला—"जोगी बेटा, सामने आकर एक मासूम बच्ची के प्यार को तो तू अपने माथे लगा नहीं सका—समाज से फिर तू क्या जूझेगा ? तू पढ़ा-लिखा है—खूब सोच-समझकर काम कर। मैं तो मिडिल भी मुश्किल से पास कर पाया। मुझ गँवार को क्या पता कि संगठन क्या होता है और समाज के सामने कैसे आया जाता है। अनुभव और समय ने जिस राह पर डाल दिया—चलने लगे।"

योगेन्द्र रुआँसा-सा हो गया। डाक्टर हसन ने महसूस किया कि ठाकुर को समाज और समय ने मजबूर कर दिया है—इसलिए बहस निरसू से मानने वाला यह नहीं है। उन्होंने कुछ सोचकर कहा—"अच्छी बात है। जो जी में आये, कीजिये। लेकिन मेरी एक बात माननी होगी।"

"आज्ञा कीजिए !"

"इस गाँव के बाहर चले जाइए !"

"चला जाऊँगा, लेकिन एक और डाका डालने के बाद !"—इतना कहकर निरसू अचानक उठ खड़ा हुआ और डाक्टर हसन को प्रणाम करके चलता बना, जैसे यही सूचना देने आया था कि उसे गाँव में एक डाका और डालना है।

डाक्टर हसन और योगेन्द्र हक्के-बक्के दरवाजे की ओर देखते रहे और निरसू देखते देखते आँखों से ओझल हो गया। डाक्टर हसन ने अपनी कोठरी में चारों ओर नजर दौड़ाई और उस कुर्सी को भी अजीब दृष्टि से देखा जिस पर अभी-अभी निरसू बैठा था—जैसे वह मन के विकल्पात्मक भाव को समझा रहे हों कि·····'हाँ, अभी-अभी निरसू ही यहाँ आया हुआ था।'

: १६ :

निरसू ठाकुर के व्यंग से योगेन्द्र का हृदय बिंध गया। एक बार फिर अचला की याद का घाव ताजा हो आया और योगेन्द्र उस दर्द से तड़प उठा। ग्लानि और क्षोभ से उसका रोआँ-रोआँ कलप उठा। उसकी कायरता ही उसे धिक्कारने लगी। वह पुस्तक पढ़ने बैठता तो लगता कोई गँवार उसकी हँसी उड़ा रहा है। वह बच्चों को पढ़ाने बैठता तो लगता—हजारों-लाखों बच्चों की लाशें धूप में सूखकर अकड़ गई हैं, उनके पेट धँस गए हैं, आँखों की जगह कोटर बन गया है और सूखे-सूखे पैर बैंगन की तरह जमीन पर छितराए पड़े हैं,—और जब वह अचला की याद से मूक क्रन्दन करने लगता तो देखता कि निरसू काका अट्टहास कर रहे हैं।.....तब उसने सुना कोई कह रहा था—'तू कायर है। पुस्तकें पढ़-पढ़कर व्यर्थ अपनी बुद्धि बढ़ाता है। तुम्हारा हृदय तो मर चुका है। तू धोखेबाज है। एक मासूम की जिन्दगी को तूने अपनी प्रतिष्ठा और यश की वेदी पर चढ़ा दिया।'

योगेन्द्र जहाँ भी जाता—उसके चारों और इसी तरह की आवाजें गूँजती रहतीं। वह पढ़ना चाहता, लेकिन पढ़ नहीं पाता। वह पढ़ाना चाहता लेकिन उसकी चेतना कहीं खो जाती। दिन-दिन-भर वह भटकता रहता, रात-रात-भर उसे नींद नहीं आती।

और तब उसने खेतिहर मजदूरों के घर जाना शुरू किया। योगेन्द्र उन्हें समझाता कि एकता किसे कहते हैं और उसमें कितनी शक्ति है। वह उन्हें एक होकर जीने-मरने की सलाह देता। खेतिहर मजदूरों की सभा होती और योगेन्द्र उनके बीच भाषण देता—उनमें जागृति पैदा करता। धीरे-धीरे मजदूर वर्ग अपनी शक्ति और अधिकार से परिचित होने लगा। गाँव में खलबली मच गई। लोगों में कानाफूसी होने लगी कि ये शूद्र लोग रात-रात भर सभा करते हैं और डाका डालने की योजना बनाते हैं। लोगों ने यह भी कहना

शुरू किया कि डाक्टर हसन के बहकावे में आकर योगेन्द्र भी उन डाकुओं से जा मिला है·····।

योगेन्द्र ये सब बातें सुनता तो हँसकर टाल देता। उसे इन कामों में सुख और शान्ति मिलने लगी थी। उसने अपने पिता की डाट-फटकार की भी परवाह नहीं की और अपने काम में जुटा रहा। लोग उसकी दृढ़ता और चरित्र-बल के कायल थे।

शाम हो चुकी थी। योगेन्द्र धीरे-धीरे टहलता हुआ लाइब्रेरी से अपने घर की ओर जा रहा था। वह कई तरह के विचारों में डूबता-उतरता चला जा रहा था। और हर विचार के साथ उसका अपना भविष्य टँका होता·····'अचला कहाँ होगी·····क्या सोचती होगी·····कब तक छल-प्रपंच का जीवन चलता रहेगा·····एक गाँव के खेतिहरों को सजग कर देने से पूरे देश में कैसे परिवर्तन आ जायगा·····आखिर कौन-सा वह सिद्धान्त है, जिस पर पूरे देश को चलना चाहिए····· क्या डाक्टर हसन का "नेकी कर दरिया में डाल" वाला सिद्धान्त पूरे समाज और देश का सिद्धान्त बन सकता है ?····· लेकिन ऐसी ज्योति तो व्यक्ति के हृदय में ही जला करती है····· अचला का क्या होगा ?·····यह जोगी का नकाब कब तक मेरे चेहरे पर पड़ा रहेगा ?·····गाँव के खेत, कच्ची सड़क, कच्चे-पक्के घर, घरों के ऊपर कुहासे की तरह जमा धुआँ, आसमान से तैरता-उतरता हुआ अंधकार, वातावरण में गूँजता हुआ हल्का-हल्का जन-रव····· कितने लुभावने लग रहे हैं। लेकिन इन सभी चीजों के भीतर कितनी बड़ी बेचैनी छिपी है ·····इस मूकता की ध्वनि में कितना भयंकर कोलाहल और हाहाकार गूँज रहा है·····कितनी जटिल समस्याएँ हैं और कैसे-कैसे जहरीले लोग सादगी के लिबास में जीवित पड़े हैं·····?'

"ऐ जोगी !"—रघूबाबू की आवाज ने उसे चौंका दिया—"कहाँ घूमता रहता है ?" योगेन्द्र अपने घर के दरवाजे पर पहुँच

चुका था।

"कहीं भी नहीं।"—योगेन्द्र ने सकपकाते हुए कहा।

"आजकल तुम्हारे रंग-ढंग अच्छे नहीं हैं। देखता हूँ कि मुझे कोई उपाय करना ही पड़ेगा।"

"जी ?"—योगेन्द्र विस्मित हो रहा था।

"तुम रात-रात-भर शूद्रों की बस्ती में पड़े रहते हो। यह अच्छा नहीं है।"

"लेकिन बाबूजी, इसमें बुराई ही क्या है ? बेचारे गरीब और अनपढ़ हैं। उन्हें साक्षर बनाकर मैं कोई बुरा काम तो नहीं कर रहा हूँ।"

'सब पढ़-लिखकर लाइब्रेरी में ही बैठेंगे तो खेत कौन जोतेगा ?"—रघूबाबू की आवाज में रूखापन और तेजी बढ़ती जा रही थी!

योगेन्द्र ने सहमकर कहा—"पढ़-लिखकर वे लोग और भी अच्छे ढंग से खेती करेंगे ···।"

"और मजदूरी भी अच्छे ढंग से माँगेंगे।"—रघूबाबू ने बीच ही में व्यंग से कहा।

"अपने अधिकार की माँग करना या उनकी रक्षा करना कुछ बुरा तो नहीं है।"

"फिर तू किस बूते पर नवाब की तरह रहेगा।"—रघूबाबू चीख उठे—"कभी सोचा भी है कि लाइब्रेरी में बैठा-बैठा जो भात-दाल उड़ाता है और अच्छे-अच्छे कपड़े चमकाए फिरता है—वह सब कहाँ से आता है ? क्या यह सब, उन शूद्रों को साक्षर बनाने से बरस पड़ता है ?"

"उन्हीं शूद्रों के चलते तो हम लोग खाते-पहनते हैं। इसलिए मैं उनकी सेवा करता हूँ तो इसमें ·····।"

"चुप रह! सेवा का बच्चा। जबान चलाता है। कान खोलकर

सुन·····कहाँ चला ?" रघूबाबू चीख उठे ।

घर के भीतर से किसी औरत का चीत्कार सुनकर योगेन्द्र जल्दी से घर के भीतर जा पहुँचा । रघूबाबू लाल-लाल आँखें किये ताकते रह गए ।

योगेन्द्र ने भीतर पहुँचकर देखा कि उसकी भाभी सरोज औंधी पड़ी फफक-फफककर रोये जा रही है और उसकी माँ अपनी कमर पर दोनों हाथ रखे महाकाली-सी गाली बके जा रही है । योगेन्द्र ऐसे दृश्य देखने का अभ्यस्त हो चुका था । फिर भी आज, न जाने क्यों, उसका हृदय रो उठा । क्रोध से उसकी देह काँपने लगी । और तभी उसकी माँ सरोज पर प्रहार करने जा रही थी कि योगेन्द्र गरज उठा—"यह क्या करती है ?"···माँ क्षण-भर स्तम्भित-सी रह गई । आज तक योगेन्द्र को क्रोध करते किसीने नहीं देखा था । माँ आश्चर्य से योगेन्द्र के परिवर्तित चेहरे को देखने लगी । योगेन्द्र क्रोध से लटपटाती आवाज में बोला—"उसे जान से मार डालेगी क्या?····· तुम्हारे····· हृदय में दया-माया नहीं है ? पत्थर बन गई है ? छी: छी: !"

"और माँ को डाटते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती ?"— रघूबाबू की आवाज गूँज उठी । रघूबाबू योगेन्द्र की पीठ पर ही वहाँ जा पहुँचे थे ।

योगेन्द्र ने तमककर कहा—"जी·····माँ के इस रूप को देखकर मुझे अपने-आप पर ग्लानि होती है कि मैं क्यों ऐसी माँ का·····।"

"चुप रह ! बदतमीज ! निकल जा यहाँ से—अभी तुरन्त मेरी आँखों से दूर हो नालायक !"—रघूबाबू क्रोध से काँपने लगे ।

योगेन्द्र कुछ नहीं बोला । चुपचाप लम्बे-लम्बे डग मारता हुआ घर से बाहर हो गया । घर में कुछ देर खामोशी छाई रही कि एकाएक योगेन्द्र की माँ फूट-फूटकर लगी रोने और सरोज को कोसने लगी—"हे दीनानाथ मुझे उठा लो । इस नागिन ने मेरे एक जवान बेटे

को तो डस ही लिया। अब इस डायन ने मेरे दूसरे बेटे पर भी जादू कर दिया। हे गंगा मइया, या तो इस डायन को ले जाओ या मुझे बुला लो ……!"

और योगेन्द्र इस सुरीले क्रन्दन की अस्पष्ट आवाज सुनता हुआ लाइब्रेरी की ओर चला जाता रहा। क्रोध, ग्लानि, वेदना और सहानुभूति से उसका हृदय फटा जा रहा था। लाइब्रेरी पहुँचते ही वह बरामदे में पड़ी चौकी पर धम्म से गिर पड़ा। फिर उसे कोई सुधि नहीं रही। रात घिर आई, लेकिन उसने लालटेन नहीं जलाई—पड़ा रहा, चुपचाप—न जाने किस गहराई में डूबा हुआ और आकाश के तारों की काँपती हुई, झिलमिलाती हुई रोशनी तार-तार होकर उसकी आँखों तक खिंच आई।

बहुत रात गये योगेन्द्र चौंककर उठ बैठा। सोचते-सोचते उसे झपकी लग गई थी कि भयंकर चीख-चिल्लाहट से उसकी नींद टूट गई। वह आँखें फाड़-फाड़कर अंधकार में देखने लगा। रोने-चिल्लाने की आवाज उसके घर की ओर से ही आ रही थी।

आशंका से उसका हृदय काँप उठा—'कहीं उसकी माँ ने या सरोज ने आत्म…… ?' इससे आगे वह नहीं सोच सका। शाम को ही उसने अपने घर कभी नहीं जाने का निश्चय कर लिया था, लेकिन इस दारुण चीख ने उसके निश्चय को हिला दिया। उसके पैर अपने-आप घर की ओर भागने लगे ……।

घर पहुँचकर उसने देखा कि पूरा गाँव उसके घर के बाहर खड़ा अजीब-अजीब बातें कर रहा है। योगेन्द्र की समझ में कुछ भी नहीं आया। वह धड़कते हृदय से भीड़ को चीरता हुआ बरामदे में पहुँचा तो क्या देखता है कि उसके पिता सन्दूक के नीचे खून में लथ-पथ बेहोश पड़े हैं और वहीं पर रामभाई भी पड़े दर्द से कराह रहे हैं। बरामदे में पड़ा हुआ लम्बा-चौड़ा सन्दूक टूटकर उल्टा हुआ है और उसकी माँ और भाभी कलेजा फाड़-फाड़कर रोये जा रही हैं।

"क्यों क्या हुआ है ?"—योगेन्द्र ने हाँफते हुए पूछा !

"होगा क्या ? निरसू ठाकुर ने रुपया-पैसा तो लूट ही लिया। ऊपर से इन लोगों को बुरी तरह मारा-पीटा भी।"—नेताजी ने रौद्र मुद्रा से कहा।

योगेन्द्र ने लालटेन निकट लाकर उसकी रोशनी में अपने पिता और भाई का घाव देखा और वहाँ खड़े लोगों से पूछा—"डाक्टर साहब को बुलाने कोई गया है ?"

"उसी बदमाश का तो यह काम है। निरसू तो उसीके इशारे पर नाचता है !"—नेताजी ने तमककर कहा।

योगेन्द्र ने डाटकर पूछा—"मैं पूछता हूँ—डाक्टर को कोई बुलाने गया है या नहीं ?"

"नहीं।"—नेताजी ने अपना-सा मुँह बनाते हुए धीरे से कहा।

योगेन्द्र लपककर डाक्टर हसन के दवाखाने की ओर भागा। डाक्टर हसन जग रहे थे।

"क्यों खैरियत तो है ?" डाक्टर हसन ने अपना खास प्रश्न किया।

"जरा जल्दी चलिए ! पिताजी और भाई जी बुरी तरह जख्मी हो गए हैं।"

"ऐं ?"—डाक्टर हसन चौंक उठे।

"सुना, निरसू काका ने ही यह कुकर्म किया है !"—योगेन्द्र ने कुछ ग्लानि-भाव से कहा।

"हाँ, शोर-गुल सुनकर मैं बाहर निकला तो देखा कि निरसू ठाकुर कुछ लोगों के साथ तेजी से नदी की तरफ चले जा रहे थे। मैंने ऐसे मौके पर टोकना अच्छा नहीं समझा।" डाक्टर हसन ने कोट पहनते हुए गम्भीर आवाज में कहा।

सुबह होते-होते रघूबाबू को अच्छी तरह होश आ गया। उनके सिर में बहुत जोर की चोट आई थी—बहुत खून गिर गया था और

रामबाबू के दोनों पैरों की हड्डियों में घातक चोट लगी थी।

डाक्टर हसन जब जाने लगे तो रघूबाबू ने कराहते हुए कहा—"मैं पुलिस को जरूर खबर कर दूँगा।···जानते हो डाक्टर?—निरसू ने ही मेरी यह दशा बनाई है। सन्दूक से बारह हजार रुपया भी लूट ले गया। मैं तो मर गया डाक्टर! यह निरसू बहुत जालिम हो गया है।"

"मैं जानता हूँ!" डाक्टर हसन बहुत धीमी आवाज में बोले। उनका चेहरा अत्यधिक गम्भीर हो उठा था और उनकी आँखों में द्वन्द्व के तूफान झलक रहे थे।

डाक्टर हसन का जवाब सुनकर रघू बाबू के पीले चेहरे पर उल्लास की लहर दौड़ पड़ी। उन्होंने तपाक से पूछा—"तुम कैसे जानते हो डाक्टर?"

"मैंने उन्हें नदी की ओर भागते देखा।"

"तुम पुलिस से यह बात कहोगे न?"—रघूबाबू ने रुआँसा होकर दीन स्वर में पूछा। डाक्टर हसन दूर आम की गाछी की ओर देख रहे थे, जिसके पीछे से झाँकती आकाश की सघन लालिमा आने वाले दिन का संकेत कर रही थी। वह बहुत उदास और मजबूर से हो रहे थे। रघूबाबू ने फिर पूछा—"क्यों डाक्टर, जो कुछ तुमने देखा, वह पुलिस से तो कहोगे न?"

"कहूँगा।" डाक्टर हसन ने वैसी ही मुद्रा में कहा, जैसे कोई बुत बोल रहे हो।

और पुलिस के आने पर डाक्टर हसन ने उससे सही बातें बता दीं। निरसू ठाकुर के नाम वारंट कट गया। लेकिन निरसू का कहीं पता नहीं था। गाँव-भर में खलबली मच गई। दस रोज के भीतर ही दो जबरदस्त डाके पड़ गए। पूरे इलाके में निरसू का आतंक छा गया।

: १७ :

डाक्टर हसन ने घड़ी देखी—रात के ग्यारह बज रहे थे। उन्होंने एक लम्बी साँस खींची और फिर पढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद दरवाजे पर थपथपाहट हुई। दरवाजा खोलकर डाक्टर हसन ने देखा—निरसू खड़ा है। डाक्टर हसन संक्षिप्त में 'आइये' कहकर अपने बिस्तर के पास लौट आए। निरसू चुपचाप उनके पीछे-पीछे आया और डाक्टर हसन के बैठ जाने के बाद वह भी एक कुर्सी पर बैठ गया। कुछ देर तक दोनों चुप रहे। डाक्टर हसन अपने मन का भाव छिपाने के खयाल से एक सिगरेट निकालकर माचिस पर पटकते रहे कि निरसू बोला—"आप भी मुझसे नाराज हैं ?"

"नाराज तो नहीं हूँ। हाँ, दुखी अवश्य हूँ।"·····मैंने तुम्हारे विरुद्ध पुलिस में बयान दिया है।"

"मैं जानता हूँ। लेकिन इसके लिए आप दुखी क्यों हैं ?"

"मैं अपने विचार और व्यवहार से तुम्हें सही राह पर लाने में विफल रहा·····।"

"और अब पुलिस का सहारा लेना पड़ा !"—निरसू ने सहज स्वर में कहा।

डाक्टर हसन ने तुरन्त जवाब दिया—"हाँ, अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए।"

निरसू अचानक ही हँसने लगा। डाक्टर हसन ने अचकचाकर निरसू को देखा। वह हँसता हुआ बोल उठा—यही बात मैं कबसे कहता आ रहा हूँ।"

"क्या ?"—डाक्टर हसन ने कौतूहल से पूछा।

"यही कि बिना शक्ति का सहारा लिये आज की दुनिया में कोई काम नहीं होता।"—कहते-कहते निरसू गंभीर और संवेदनशील हो उठा और कहता गया—"मुझ-जैसे एक गँवार को सुधारने के लिए

आपको शक्ति की शरण लेनी पड़ी। फिर पूरे समाज को सुधारने के लिए क्या उपाय है ? खराबियों की जड़ इतनी गहराई तक धँसी हुई है कि बिना भीषण-प्रहार के ये खराबियाँ मिट नहीं सकतीं। मैं जानता हूँ डाक्टर साहब, कि मेरे किये कुछ नहीं होगा। लेकिन एक खलबली तो मचा ही दूँगा। लोग पौरुष और शौर्य की बातें तो करेंगे।"

डाक्टर हसन ने एक बार निरसू की ओर देखा—उसका मुखमंडल सात्विक क्रोध और शुद्ध प्रतिकार के भाव से प्रदीप्त हो रहा था, उसकी आँखों में औचित्य की ज्योति जल रही थी। डाक्टर हसन ने आँखें झुका लीं। अस्पष्ट भावों के द्वन्द्व में उनका मन डूब गया। कुछ देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। बाहर अंधकार घात में जमा था, एकाध बार दूर पर कुत्ते भौंकने लगते और गाँव के चौकीदार की ललकार, ठंडी हवा की लहरों पर दौड़ पड़ती और बस ! फिर खामोशी को ध्वनित करने वाली घड़ी की 'टिक्-टिक्' के सिवा और कुछ नहीं !··· महाशांति !!

"डाक्टर साहब !"—निरसू बोल उठा—"मैं अपना वचन पूरा करने आया हूँ।"

"कैसा वचन ?"

"मैंने आपसे कहा था कि इस गाँव में बस एक डाका और डालूँगा। सो मैंने पूरा कर लिया। अब इस गाँव से मेरा कोई संबंध नहीं।"

"निरसू !"—डाक्टर हसन बहुत ही भावुक स्वर में बोले—"तुम इस काम को छोड़ नहीं सकते ?"

"नहीं डाक्टर साहब ! आज तक मैंने कोई काम अधूरा नहीं छोड़ा है और मेरे इस नये काम का तो कोई अंत भी नहीं है। लेकिन मैं अपना अंत तो कर ही सकता हूँ। अब मुझे अपनी राह पर चलने दीजिए !"

"तुमने रघूबाबू-जैसे वृद्ध का सिर तोड़ दिया। यह अच्छा नहीं किया।"

"मैंने तो उनका स्पर्श तक नहीं किया। वह सन्दूक पकड़कर पड़

रहे और इसी छीना-झपटी में सन्दूक की चोट से बाप-बेटे दोनों घायल हो गए। वैसे उनके घायल हो जाने का मुझे अफसोस भी नहीं है।"

"तो क्या तुम आदमी और जानवर में कोई फर्क नहीं मानते ? लूट-खसोट करना तो राक्षसी-वृत्ति है।"—डाक्टर हसन के स्वर में घृणा का अन्दाज था।

निरसू के दाँत कटकटा उठे। उसने डाक्टर हसन के चेहरे पर अपनी आँखें गड़ाकर कहा—

"अचला और जोगी एक-दूसरे के नहीं हो सके, मेरी पत्नी मर गई, नेताजी अपने भाई का सत्यानाश करने के क्रम में अपनी जायदाद गिरवी रखता जा रहा है, डाक-बाबू जैसे कितने बाबू भूख और मजबूरी से तंग आकर आत्म-हत्या करने में परम सुख मानने लगे हैं और निष्काम सेवा के बदले आपको बदनामी और भर्त्सना मिल रही है—यह सब क्या है ? इसके पीछे कौन-सी वृत्ति है ? और आज मैं जो कुछ हूँ उसकी जिम्मेवारी किस पर है ? क्या मुझ पर ?"

"ठीक है कि समाज ने तुम्हारे साथ अन्याय किया है। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं हुआ कि तुम भी जुल्म और अन्याय करो। समाज को बदलने के और भी तो बहुत-से तरीके हैं।"

"यह सब सोचना-समझना आप-जैसे पढ़े-लिखे लोगों का काम है डाक्टर साहब ! मैं तो आज के समाज पर कलंक का एक जीवित धब्बा हूँ, जिसे देखकर आप चाहें तो आँखें झुकाकर चुप लगा सकते हैं या उस धब्बे को, अपने सुकर्मों से मिटा भी सकते हैं। लेकिन इतना तय है कि आज के समाज में मेरी जगह अक्षुण्ण है। मुझे मिटाने के लिए आज के समाज को मिटाना होगा।"

डाक्टर हसन यह सोचकर चकित थे कि चन्द रोज में ही निरसू क्या से क्या हो गया है !

"अच्छा डाक्टर साहब, अब आज्ञा दीजिए ! जिन्दा रहा तो फिर दर्शन करूँगा।"—और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये निरसू

कोठरी के बाहर हो गया। डाक्टर हसन दरवाजे के बाहर अंधकार में देखते रहे, जिसमें होकर निरसू चला गया था। वहाँ अंधकार के सिवा और कुछ नहीं था जैसे निरसू उसी अंधकार में डूब गया हो—घुल-मिल गया हो।

× × ×

रघूबाबू और रामबाबू स्वस्थ हो चले थे। फिर भी डाक्टर हसन दिन-भर में एक बार उन्हें अवश्य देख जाते। रामबाबू के दोनों पैरों में प्लास्टर लगा था। इसलिए वह दिन-भर पड़े रहते और रघूबाबू अपने दालान के नीचे बेचैनी से चहल कदमी करते रहते। निरसू अब तक फरार था। पुलिस दिन-रात निरसू की टोह में घूमती रहती, लेकिन निरसू तो क्या उसकी गंध तक पाने में भी बेचारी पुलिस असमर्थ थी। रघूबाबू दिन-रात पुलिस को गाली देते रहते। उनके बारह हजार रुपये गायब हो गए और पुलिस कुछ नहीं कर पाई—यह सोच-सोच-कर रघूबाबू मरे जा रहे थे।

एक दिन डाक्टर हसन जब उनके घाव की परीक्षा कर चुके तब रघूबाबू ने कहा—"ये पुलिस वाले भी एक नम्बर के बदमाश हैं। सब डाकू-चोरों से मिले हुए हैं। देखो तो, डाका पड़े आज पाँच रोज हो गए, लेकिन पुलिस कुछ नहीं कर सकी।"

"अब तो इस घटना को भूल ही जाइए रघूबाबू!"—डाक्टर हसन ने कहा।

रघूबाबू ने डाक्टर हसन को लाल-लाल आँखों से देखा और कहा—"जिसके पैर न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई? तुम्हारे इतने रुपये गायब हुए होते तो जानते कि भूलना किसे कहते हैं।"

"मैं ऐसा काम ही नहीं करता कि डाकुओं को मुझे लूटने का मौका मिले।"

"तो क्या मैं बेईमान हूँ? मैंने कोई खराब काम करके रुपया इकट्ठा किया था?"—रघूबाबू तड़प उठे।

"मैं ऐसा आरोप तो नहीं लगा रहा हूँ। मेरे कहने का मतलब तो यह था कि मैं रुपया बटोरकर रखता ही नहीं कि डाकुओं को आने का बहाना मिले।"—डाक्टर हसन ने शांत स्वर में कहा।

रघूबाबू ने बात समझी नहीं और कहा—"लेकिन यह तो सरासर अन्याय है—जुल्म है। मैंने हर समय—सुख-दुःख में—निरसू की मदद की और उसने मेरे उपकार का बदला इस तरह दिया।"

"इसीलिए तो अर्ज करता हूँ कि अब उन बातों को भूल जाइए और निरसू को क्षमा कर दीजिए। क्षमा-दंड से बढ़कर और कोई दंड नहीं है। और इस तरह वह सुधर भी सकता है।"

"चुप रहो डाक्टर! तम्हारे-जैसा मेरा मन नहीं है कि तुरंत बर्फ, तुरंत पानी। जो एक बार निश्चय कर लिया सो कर लिया। पीछे पैर हटाना मैंने नहीं सीखा।"

"अच्छी राह पर लौट आने का मतलब पीछे पैर हटाना नहीं होता। ऐसा करके आप अपनी उदारता और साहस का परिचय देंगे।"

"ए डाक्टर, अपना उपदेश अपने पास रखो। मैं दुनिया को उपदेश देता हूँ और तुम मुझे उपदेश देने चले हो।"—रघूबाबू ने दंभ से कहा।

डाक्टर हसन के होठों पर मुस्कुराहट दौड़ गई। उन्होंने शांत भाव से कहा—"मैं उपदेश तो नहीं दे रहा। आप स्वयं सब-कुछ जानते हैं। मैं तो आपको याद ही दिला रहा हूँ।"

"इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं डाक्टर! जमाना ही ऐसा आ गया है कि लौंडे-छौंडे हम लोगों को उपदेश देते फिर रहे हैं। अब जोगी भी मेरे सामने जबान चलाने लगा है और मैं जानता हूँ कि यह सब आग तुम्हारी ही लगाई हुई है।" रघूबाबू बोलते-बोलते रुआँसे-से हो गए।

डाक्टर हसन चुप रहे। रघूबाबू भी अपनी सूनी दृष्टि कहीं दूर पर टिकाये रहे कि रामबाबू बोल उठे—"जोगी तो बिल्कुल पागल

हो गया है डाक्टर साहब ! कल सुबह एक अच्छा-खासा लेक्चर झाड़ गया । कहता है कि जो रैयत किसी की जमीन को वर्षों से जोत रहा है वह जमीन अब उसी रैयत की हो गई ।"

"इतना ही नहीं ।"—रघूबाबू बोल उठे—"अब वह धमकी भी देने लगा है कि रैयत मालिक से पूछे बिना ही फसल काट लेंगे और यदि किसी ने विरोध किया तो आन्दोलन छिड़ जायगा ।"

"जोगी जी कोई अनुचित या गैर-कानूनी बात तो नहीं कहते । जमीन का वास्तविक अधिकारी तो वही है जो उसे जोतता है ।"—डाक्टर हसन ने कहा ।

रघूबाबू क्रोध से काँप उठे—"अरे जाओ-जाओ ! बड़े अधिकार वाले बनते हो । मैं अकेला ही तुम सबोंसे निबट लूँगा । देखता हूँ कि कौन जमीन पर दखल जमाता है । बस, इन सारे खुराफातों की जड़ में तुम हो । जोगी और निरसू तो तुम्हारे इशारे पर नाचने वाले टट्टू हैं—टट्टू !"

"आपके गाँव की राजनीति से मुझे कोई मतलब नहीं है रघूबाबू ! मैं तो केवल डाक्टर हूँ और सेवा करना जानता हूँ । हाँ, यदि कोई मुझसे राय माँगता है तो मैं अपने को धन्य समझता हूँ और जो कुछ उचित समझता हूँ—कह देता हूँ ।·····अच्छा अब आज्ञा दीजिए । नमस्कार !"

डाक्टर हसन चले गए । निरसू ठाकुर के चेहरे पर घृणा और प्रतिकार की भावना सजग हो उठी और उनके मुँह से निकल पड़ा—"साला अपने को बड़ा तेज समझता है ।"—और दो-तीन गाली और देकर उन्होंने एक लोंदा थूक वहीं फेंक दिया । रामबाबू अनिश्चयात्मक स्थिति में पड़े रहे—उनके चेहरे पर भाव-शून्यता का प्रतिबिम्ब झलक रहा था ।

निरसू के आतंक से पूरा इलाका काँपने लगा । थाने में पुलिस की संख्या चौगुनी कर दी गई । लोगों ने अपने जेवरात और रुपये-पैसे

जमीन के नीचे गाड़ दिये। गाँव-घर में तरह-तरह की कहानियाँ निकल पड़ीं और उन कहानियों को कह-सुनकर लोग अधमरे-से रहने लगे। अजीब वातावरण हो गया—भयावह।

और इधर सुगढ़िया गाँव की हालत तो और भी अजीब हो गई। छोटी जाति के असामी, रैयत और बटाईदार किंचित् अकड़ के रहने लगे। ब्राह्मणों और शूद्रों का सम्बंध कड़वाहट से अकड़ गया। और योगेन्द्र ने लाइब्रेरी को ही अपना बसेरा बना लिया।·····

इन तमाम बातों पर मन-ही-मन विचार करते-करते डाक्टर हसन की आँखें बन्द हो गईं। वह एक आराम-कुर्सी पर लेटे थे। सामने की खिड़की खुली थी और पीछे कोठरी का दरवाजा भी खुला था। शाम हो चुकी थी। पूस की भयंकर ठंड से अंधकार भी अकड़कर जम गया था। निरसू के आतंक से समय भी प्रभावित था—शाम होते ही चारों ओर सघन नीरवता व्याप जाती। डाक्टर हसन सोच रहे थे··· 'क्या आदमी ऐसा ही रहेगा? दूसरे की स्थिति में अपने को रख-कर वह समस्या का निदान नहीं निकाल सकता?·····मनुष्य जन्म से ही प्यार सीखता है, फिर बड़ा होकर वह ऐसा क्यों हो जाता है?··· वह ब्राह्मण है, वह शूद्र है, वह मुसलमान है वह गरीब है, वह अमीर है,·····यह सब क्या है? कौन है जो इस तरह के भेद-भाव पैदा करता है? बचपन में कुछ नहीं और बड़ा होते ही—बुद्धि के विकसित होते ही यह भेद पड़ जाता है।·····क्या हमारी बुद्धि ही इन बुराइयों की जड़ है? दर्शन, धर्म, नियम, परम्परा और अनुभव के बावजूद हम इतने अज्ञानी क्यों बने हुए हैं? कौन दोषी है?—समाज या संस्कार?···और यह संस्कार किस मनोभूमि पर अंकुरित होता है?' ···डाक्टर हसन सोचते रहे···सोचते रहे; लेकिन प्रश्न का क्रम टूटता नजर नहीं आ रहा था कि अचानक ही जानी-पहचानी आवाज से वह चौंक उठे। कुर्सी पर बैठे-बैठे ही उन्होंने सिर घुमाकर देखा दरवाजे के पास नमस्कार की मुद्रा में दोनों हाथ जोड़े अचला खड़ी थी। डाक्टर

हसन चमत्कृत-से होकर उठ खड़े हुए। उनकी समझ में नहीं आया कि क्या पूछें ?—क्या कहें ?

अचला ने ही बात शुरू की—"आप कैसे हैं ?"

"अच्छा हूँ। आइए ! क्या आप अकेली हैं ?"

"हाँ !"—अचला ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। डाक्टर हसन ने देखा कि हाँ' कहते ही अचला की आँखें भर आई हैं। उन्होंने अपना उद्देश्य स्पष्ट करने के खयाल से फिर पूछा—"मेरा मतलब है, डाक-बाबू कहाँ हैं ?"

"....."

"क्यों ? क्या.....आप !".....

और अचला फफक-फफककर रोने लगी।

डाक्टर हसन किंकर्तव्य-विमूढ़-से हो गए। वह किसी भी बात की जड़ पकड़ पाने में असमर्थ-से हो रहे थे। क्षण-भर वह यों ही अवाक् और हतबुद्धि-से खड़े रहे कि अचानक उन्हें ध्यान आया और अचला की पीठ पर हाथ रखकर उसे कुर्सी तक ले आए और बोले—

"बैठिए !" फिर निरुद्देश्य भाव से उन्होंने दरवाजे की ओर देखा तो उनकी नजर दरवाजे के बाहर पड़े एक अटैची-केस पर जा पड़ी। वह अटैची-केस उठाकर भीतर ले आए। अचला सिर झुकाये कुर्सी पर बैठी रही। उसने रोना बन्द कर दिया था लेकिन उसकी आँखों से अश्रु-धारा का प्रवाह जारी था। ऐसी दशा में कुछ पूछ-ताछ करना डाक्टर हसन ने उचित नहीं समझा। वह भीतर आँगन मे जाकर 'कुकर' में दो आदमियों के योग्य भोजन का सामान रखने लगे।

अचला भी उनके पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँची—"हटिए, मैं सब प्रबन्ध कर देती हूँ।"

"अरे छोड़िए भी ! मैं भी मेहमानदारी जानता हूँ।"—डाक्टर हसन ने 'कुकर' में चावल रखते हुए कहा।

तब तक अचला अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ चुकी थी। उसने

डाक्टर हसन को एक हाथ से एक तरफ करते हुए कहा—"मैं मेहमान बनकर यहाँ नहीं आई हूँ।"

डाक्टर हसन कुछ नहीं बोले। चुपचाप एक ओर हटकर खड़े हो गए। अचला ने 'कुकर' में आग सुलगाई, चावल-दाल लगा दी और फिर हाथ-मुँह धोने नल पर चली गई। डाक्टर हसन अपनी कोठरी में चले आए थे। वह कुछ-कुछ चिन्तित-से हो उठे थे। अचला जब मुँह-हाथ धोकर कोठरी में आई तो उस समय डाक्टर हसन खिड़की के पास बाहर अन्धकार में आँखें गड़ाये खड़े थे।

अचला ने कोठरी में आकर बहुत ही इतमीनान और शान्त भाव से कहा—"बाबूजी का स्वर्गवास हो गया।"

डाक्टर हसन को जैसे बिजली छू गई। वह चौंककर घूम गए। देखा—अचला की आँखें सनी थीं, उसके होठों पर रोने-जैसी मुस्कराहट काँप रही थी और उसकी समूची देह मूक-चीत्कार का प्रतीक बन रही थी। डाक्टर हसन ने आँखें झुका लीं और कुछ देर कोठरी में टहलते रहे। बाहर सन्नाटा छाया था। किसी बच्छड़े की दूर से आती हुई मासूम आवाज अन्धकार को भेदती हुई कोठरी की नीरवता में अनुराग भर गई।

डाक्टर हसन ने कहा—"आप बैठिए! मैं जोगीजी को बुला लाऊँ।" अचला ने कोई जवाब नहीं दिया। वह सिर झुकाये खड़ी रही।

डाक्टर हसन जब योगेन्द्र को लेकर वापस आये उस समय अचला भीतर आँगन में थी। डाक्टर हसन अपनी कोठरी में ही रुक गए।

योगेन्द्र ने भीतर आँगन में जाकर देखा— अचला कुकर की आग पर रोटी सेंक रही थी।

योगेन्द्र ने धीमे-स्वर में पुकारा—"अचला!"

अचला की आँखें उठीं, उसके होंठ काँपे, उसकी साँस रुकी और वह रोटी को तवे पर छोड़कर उठ खड़ी हुई। क्षण-भर दोनों एक-दूसरे को देखते रहे। अचला दुःख और आनन्द की तीव्रता से काँपने लगी।

योगेन्द्र सहानुभूति और विश्वास से भर उठा। उसने अपने दोनों हाथ फैला दिये। अचला उसे निहारती-काँपती रही और तब बिना कुछ बोले, बिना कुछ समझे दोनों एक-दूसरे से लिपट गए। अचला सुबक रही थी और योगेन्द्र उसकी पीठ को, बालों को प्यार से सहला रहा था।

रोटी-के जलने से डाक्टर हसन की कोठरी सोंधी सुगन्ध से भर उठी। परीक्षणात्मक दृष्टि से चारों ओर देखते हुए उन्होंने जल्दी-जल्दी तीन-चार बार साँस खींची और तब, न जाने क्यों, इतमीनान की हल्की मुस्कराहट उनके मुख-मंडल पर थिरक उठी। रोटी के जलने की गन्ध बढ़ती ही जा रही थी।

: १८ :

तवे पर रोटी जल गई—उसकी गंध से डाक्टर हसन की कोठरी ही नहीं—सारे गाँव का वायु-मण्डल भर गया। सुगढ़िया गाँव नई-नई घटनाएँ देखने-सुनने का आदी हो गया था। फिर भी इस घटना ने जैसे आग फूँक दी। लोग तमतमा उठे—'एक मुसलमान के घर में हिन्दू लड़की ?'—ईर्ष्या और क्रोध से लोगों का मस्तिष्क झनझना उठा। संस्कारगत पाशविकता से गाँव का चप्पा-चप्पा गरज उठा। कायरों के पौरुष में धर्म की चेतना सनसना उठी और डाक्टर हसन-जैसे सरल व्यक्ति के चारों ओर विषधारी सर्पों के फुंकार गूँजने लगे। लेकिन गाँव का कोई भी आदमी अनायास ही नक्कू बनना नहीं चाहता था। गाँव का कोई भी घर डाक्टर हसन के आभार से अछूता न था। हर आदमी डाक्टर हसन के जादू से मोहित हो चुका था, हर आदमी की जिन्दगी डाक्टर हसन के सहारे मौत से टक्कर ले चुकी

थी और गाँव का प्रत्येक घर, डाक्टर हुसन के भरोसे, मौत की चुनौती स्वीकार करने की हिम्मत रखता था।

धर्म के नाम पर सब-के-सब आक्रोश और प्रतिहिंसा की भट्टी में सुलग रहे थे और हर आदमी दूर से ही डाक्टर हसन के घर को ललकार रहे थे लेकिन युद्ध की घोषणा किस तरह हो—इस प्रश्न पर सभी खामोश थे।

योगेन्द्र रात-भर सो नहीं पाया। कभी अलमारी से कोई पुस्तक निकालकर पढ़ने का प्रयास करता, तो कभी टहलने लगता, तो कभी बिस्तर पर लट जाता।·····'क्या मैं अचला को स्वीकार कर लूँ ?' वह सोचता। दूसरे ही क्षण वह बुदबुदा उठता—'वह तो मैं कब का कर चुका हूँ !···लेकिन रहूँगा कहाँ ? एक पेट पालना तो आसान भी है लेकिन दो-दो पेट कैसे चलेंगे ? गाँव वाले मेरे प्यार को चुनौती देंगे। पिताजी आग बन जायँगे। शूद्रों की नजर में मैं गिर जाऊँगा। गाँव के लोगों की धारणा का आधार छोटी-छोटी बातों पर ठहरा होता है। सब मुझे ढोंगी और कुकर्मी समझेंगे। किसी के पास इतना समय तो है नहीं कि मेरी भावनाओं को तौले, मेरे प्यार को परखे। सब भूखे शेर की तरह मुझ पर टूट पड़ेंगे और तब ?·····अचला का क्या होगा ? अचला मुझे कितना प्यार करती है। उसने मुझ पर विश्वास किया, मुझसे प्रेम किया, मेरे लिए दुःख सहे, मेरे भरोसे यहाँ तक आ पहुँची, मेरे बूते पर निर्भय-निश्छल अचला समाज से जूझने को तत्पर है। और मैं ? मैं द्वन्द्व में पड़ा हूँ !''·····इसी तरह की बातें सोचते-सोचते योगेन्द्र ने सवेरा कर दिया। पूरब का आकाश साफ हो गया। गाछियों पर जमे अन्धकार का किनारा लाल हो उठा। गाँव के वायु-मण्डल में जमे कुहरे पर ठंड से काँपता हुआ पराती-स्वर थिरक उठा।

योगेन्द्र का एक मन हुआ कि वह डाक्टर हसन के घर चले कि तत्क्षण लज्जा ने उसे धर दबाया। इतना सवेरे वहाँ जाने पर पता नहीं

डाक्टर हसन क्या सोचें—ऐसा विचार कर उसने लाइब्रेरी में ही कुछ देर पड़ा रहना उचित समझा। अभी वह उधेड़-बुन में ही पड़ा था कि बाहर नेताजी की पुकार सुनाई पड़ी—"कहाँ हो जोगी जी ?"

"आइए माधो काका !" योगेन्द्र ने बिस्तर पर उठकर बैठते हुए पूछा—"इतने सवेरे इधर कहाँ भटक पड़े ?"

"अरे अब देर-सबेर में भी कोई अन्तर रह गया है जोगी जी ! अब तो दिन-भर शिकार होता है और रात को इलाज। क्या बतायें जोगीजी, बस समझ लो कि गाँव पर आफत आ गई है। तुम तो जोगी ठहरे—जैसे भीतर, वैसे बाहर। लेकिन डाक्टर तो ऐसा बगला भगत है कि प्राण-रक्षा के बहाने इज्जत-आबरू तक निगल जाता है और डकार तक नहीं लेता।"

"क्या कह रहे हैं आप माधो काका ? कहीं रात में कोई भयानक सपना तो नहीं देखा है ?"—योगेन्द्र ने रोषयुक्त आश्चर्य से पूछा।

नेताजी अपने सहज स्वर में शब्द चबाते हुए बोले—"अरे नहीं जोगी जी, सपना नहीं भयानक सत्य देखा है। गाँव वाले जले बैठे हैं। तुम लोगों के नेता बने फिरते हो, समाज में सुधार लाना चाहते हो, सत्य और धर्म की रक्षा किये फिरते हो इसलिए गाँव वालों ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। हम लोग तुममें विश्वास करते हैं। हम लोग जानते हैं कि तुम निष्कपट और निर्लिप्त हो—कभी किसी को धोखा नहीं दोगे। तुम्हारे चरित्र और संयम पर हम लोगों को भरोसा है !"·····

"आप बात भी बताइएगा या केवल मेरी प्रशंसा ही करते रहिएगा ?"

"अरे बात ही बता रहा हूँ। जो योग्य है उसकी प्रशंसा नहीं की जायगी तो क्या डाक्टर हसन जैसे अयोग्य और·····।"

"डाक्टर साहब-जैसे देवता को आप क्यों गाली दे रहे हैं। छी: !"—योगेन्द्र ने बीच ही में बात काटकर नेताजी की ओर भर्त्सना

की दृष्टि से देखा।

नेताजी बौखला गए—"डाक्टर देवता है ? तुम पागल तो नहीं हो गए हो ? अरे जो मुसलमान होकर एक कुँवारी हिन्दू लड़की को फँसाकर घर में रख ले वह देवता है ?"

"क्या बकते हैं ?"

"बकता नहीं हूँ— ठीक कहता हूँ। रात मैंने अपनी आँखों से अचला को डाक्टर हसन के घर में जाते देखा है। अचला के हाथ में एक बक्सा भी था। इसका मतलब यह हुआ कि वह भागकर आयी है।"

"तो ?"

"तो क्या ? यह अधर्म है। डाक्टर को इसकी सजा मिलेगी। उसका घर आग में फूँक दिया जायगा।"

योगेन्द्र क्षण-भर कुछ सोचता रहा। चिन्ता की तीव्रता से उसका मुख-मण्डल तन गया, माथे पर बल पड़ गए, कि अचानक उसे एक उपाय सूझा—"अच्छा यह बताइए कि यदि डाक्टर साहब आप लोगों के हाथ में अचला को सौंप दें तो ?"

नेताजी इस प्रश्न के लिए तैयार नींह थे। कुछ सकपकाते हुए, नासमझ की तरह बोले—"तो ?·····तो ठीक है। हम लोग···हम··· हम लोग उन्हें माफ कर देंगे।"

"और अचला का क्या कीजिएगा ?"

"उसे भी माफ कर देंगे। और·····!"

"और क्या ?"

"उसे उसके पिता के पास पहुँचा देंगे या···या उसे ब्याह देंगे !"

"अच्छी बात है। आप लोग मुझ पर विश्वास करते हैं तो मेरी एक बात माननी होगी।"—योगेन्द्र ने गम्भीर बनकर नीतिपूर्वक कहा।

नेताजी ने तपाक से कहा—"एक नहीं—दो बात मानेंगे।"

"तो हमें एक हफ्ते का समय दीजिए और इस बीच आप लोग कोई उपद्रव न कीजिएगा—इसका वचन दीजिए।"

"लेकिन एक हफ्ता तो बहुत ज्यादा है। इस बीच तो वह लड़की धर्म-भ्रष्ट हो जायगी।"—नेताजी ने बहुत ही गम्भीर होकर कहा। जैसे कोई बड़ी बात कह रहे हों।

योगेन्द्र ने भी गम्भीरता का अभिनय करते हुए कहा—"अरे माधो काका—धर्म-भ्रष्ट तो वह कब की हो चुकी। लेकिन कोई परवाह नहीं। हमारा हिन्दू-धर्म इतना उदार और महान् है कि अचला तो क्या डाक्टर हसन की भी शुद्धि कर सकता है।"

"इसमें क्या शक है! हमारा हिन्दू-धर्म महासागर है।"

"तो आप लोग मुझे एक हफ्ते का समय दे रहे हैं?"

"हाँ।"

"और यदि इस बीच किसी ने उपद्रव किया तो?"

"कोई कुछ नहीं करेगा। मैं सबोंको इसी समय जाकर समझा-बुझा देता हूँ। रघुभाई भी सहमत हो जायँगे, क्योंकि तुम्हारा भाई राम तो पहले से ही शिथिल बैठा है। वह कहता है कि कोई लड़की किसी के साथ रहे इसमें गाँव का या धर्म का क्या बिगड़ता है।"

"ठीक है। मैं अभी डाक्टर साहब के पास जाता हूँ। लेकिन इस बीच यदि किसी ने उपद्रव किया तो बहुत बुरा परिणाम होगा। क्यों कि निरसू काका रात भी डाक्टर साहब के मकान की ओर जा रहे थे। और आप लोग जानते हैं कि डाक्टर हसन के लिए निरसू काका जान देते हैं। अगर किसी ने डाक्टर साहब के विरुद्ध कुछ किया तो निरसू काका पूरे गाँव को जलाकर राख कर देंगे।"

"तुम इसकी चिंता मत करो।"—नेता जी ने धीमी आवाज में कहा; जैसे कोई सुन न ले—"गाँव वाले जले तो बैठे हैं, लेकिन कुछ करने की किसी की हिम्मत नहीं हो रही है।"—इसके बाद नेता जी ने चारों ओर देखकर फिर जोर से कहा—"अच्छा तो मैं चलता हूँ।"

नेता जी चले गए। योगेन्द्र कुछ देर तक बिस्तर पर बैठा रहा।

बिस्तर के पास ही रखी मेज पर लालटेन अब तक जल रही थी। उसने लालटेन बुझा दी। लाइब्रेरी में धुँधलका सिमट आया; लेकिन क्षण-भर बाद ही भीतर का अंधकार काँपने लगा—बिखरने लगा। योगेन्द्र ने बाहर आकर देखा— पूर्वाकाश में जमी हुई गहरी लालिमा, दूर पर पेड़ों की खामोश पंक्तियाँ, उड़ती हुई चिड़ियाँ, थान से उठता हुआ धुँआ, गाँव के ऊपर जमा हुआ कुहरा—सब एक विस्तृत चित्र-पटी पर अंकित सजीव चित्र-से लग रहे थे। नई स्फूर्ति और नए जीवन से उसका रोम-रोम स्पन्दित हो उठा। विश्वास और प्रेम के उस अमर क्षण ने योगेन्द्र में एक नई अनुभूति, नया उत्साह जागृत कर दिया और वह लाइब्रेरी बन्द करके डाक्टर हसन के घर की ओर चल पड़ा।

डाक्टर हसन बिस्तर पर आराम से बैठे-बैठे चाय पी रहे थे और अचला मेज के पास खड़ी दूसरे प्याले में चाय बना रही थी।

"वाह! मैं आया नहीं कि मेरे लिए चाय तैयार।"—योगेन्द्र ने घर में प्रवेश करते ही कहा। अचला पूर्ववत् सिर झुकाये, मुस्कराती चाय बनाती रही और जब चाय बन चुकी तब उसने वह प्याला योगेन्द्र की ओर बढ़ा दिया।

योगेन्द्र चाय पीता-पीता नेताजी की भेंट का पूरा किस्सा कह गया। डाक्टर हसन शांत भाव से मुस्कराते हुए सब-कुछ सुनते रहे। अचला लाज और ग्लानि से मरी जा रही थी। अंत में योगेन्द्र ने पूछा—"अब क्या किया जाय?"

योगेन्द्र के प्रश्न से डाक्टर हसन की मुस्कराहट कुछ और खिल उठी। उन्होंने इसी मुद्रा में कहा—"सूर्योदय होने पर स्वस्थ आदमी इस तरह का प्रश्न नहीं करता कि अब क्या किया जाय?—सामने विस्तृत कर्म-क्षेत्र सूना पड़ा है। आप आत्म-विश्वास और लगन के साथ सामने आइये और अपने करतब दिखाइये!"

योगेन्द्र के मस्तिष्क में नेताजी की बातें चक्कर काट रही थीं कि

·····'हम लोग तुममें विश्वास करते हैं·····तुम निष्कपट और निर्लिप्त हो·····।' और योगेन्द्र सिर झुकाये चाय पीता जा रहा था। डाक्टर हसन ने सिगरेट सुलगाई और नित्य कर्म से निवृत्त होने चल दिए। अचला और योगेन्द्र निर्विघ्न बचे रहे।

"तुम अपनी राह स्वयं नहीं जानते कि डाक्टर साहब से अनाप-शनाप प्रश्न किया करते हो ?"—अचला ने नम्र किन्तु दृढ़ स्वर में पूछा।

योगेन्द्र सकपका गया—"मैं अपनी राह अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन डाक्टर साहब अनुभवी और दूरदर्शी हैं, इसलिए उनसे राय लेना कुछ अनुचित नहीं है।"

"क्या डाक्टर साहब के अनुभव और दूरदर्शिता पर ही हम लोगों का सम्बंध आधारित है ? क्या तुमने मुझे कोई वस्तु समझ लिया है कि ठोक-बजाकर, सोच-समझकर अपने पास रखने की सोच रहे हो ? यदि तुम्हारे मन में कोई भेद हो तो मुझसे कहो मैं तुम्हारी राह से अलग हो जाऊँगी।"—अचला की आवाज, दीनता से और क्रोध-जनित व्यथा से, काँप रही थी।

योगेन्द्र का हृदय चीख उठा। उसने सोचा—'वह अचला को बहुत प्यार करता है उसके बिना रह नहीं सकता, लेकिन बिना सोचे-समझे वह कोई कदम नहीं उठाना चाहता। अचला उसकी मजबूरी को समझती क्यों नहीं ?'—और वह बोला—"तुम ऐसा क्यों सोचती हो अचला ! मैं तुम्हारा हूँ। तुम मुझ पर विश्वास रखो।"

"यह शब्द तो मैं कब से सुनती आ रही हूँ। लेकिन सच पूछो तो तुम्हें स्वयं अपने पर विश्वास नहीं है। तभी तो किसी के सहारे की तलाश करते फिर रहे हो। जरा सोचो तो कि डाक्टर साहब को हम लोगों ने कितना कष्ट दिया। हम लोगों के चलते निर्दोष डाक्टर बदनाम हो रहा है और तुम अपने जोगी नाम को सार्थक सिद्ध करने पर तुले हो।"

"अचला !"

"कहो !"

"मुझे क्षमा कर दो। मैं आज ही अपने पिता से साफ-साफ कह दूँगा। आज तक ऐसा अवसर भी तो नहीं आया था। मैं आज ही सब-कुछ फैसला कर लूँगा। तुम चिंता मत करो।.....अब तो खुश हो।"

"मैं नाराज ही कब थी।"—अचला ने करुण स्वर में कहा।

योगेन्द्र उसके पास उठकर चला आया। सूरज की सुखद किरणों का फव्वारा खिड़की की राह से कोठरी को प्रकाश और उष्णता प्रदान कर रहा था। योगेन्द्र की ठंडी तलहथी के स्पर्श से अचला की कनपट्टी लाल हो रही थी और दोनों की आँखों में किरणों का प्रतिबिम्ब स्थिर हो रहा था।

बाहर खेत में कोई किशोर पंचम सुर में गा रहा था.....

"मनहिं विद्यापति गायल रे धनि धरु मन धीर,
समय आबि तरुवर फूले कतबो सिंचू नीर।....."

योगेन्द्र ने एक लम्बी साँस खींचकर अचला की दोनों कनपटियों पर से अपने हाथ हटाने चाहे कि अचला ने उन्हें अपने हाथों से जकड़ लिया। योगेन्द्र के चेहरे पर अचानक ही पकड़े जाने के समय की मुस्कराहट दौड़ उठी।

: १९ :

रग्घूबाबू बौखलाहट से भरे बरामदे में चहलकदमी कर रहे थे। घर के भीतर जोगी की माँ तूफान उठा थी। सरोज पूक्की मार-मारकर रोये जा रही थी। रामबाबू बरामदे में मुँह लटकाये बैठे

थे। उनके चेहरे पर परेशानी, ऊब और घुटन के भाव स्पष्ट थे। उनकी आँखें भारी हो रही थीं। जब-जब घर के भीतर गर्जन-तर्जन के साथ सरोज पर लात-घूँसे की बौछार पड़ती, तब-तब सरोज का क्रन्दन और तीव्र हो उठता। आस-पास की पड़ोसिनें अपने-अपने घर के दरवाजे पर गुम-सुम खड़ी थीं, लेकिन किसी में इतनी हिम्मत नहीं थी कि जरा आगे बढ़कर सरोज को बचा ले। क्रूरता की अति हो चुकी थी, लेकिन किसी का कलेजा नहीं फटा, क्रन्दन से पूरा गाँव आक्रांत हो उठा था, लेकिन किसी के मुँह से आवाज नहीं निकली, एक अबला की तड़प से वेदना की छाती फट पड़ी—सारा वायु-मण्डल शिथिल और संवेदनशील हो उठा, लेकिन किसी का मन नहीं पसीजा।

बात बिल्कुल मामूली थी। सरोज ने, सादा और बिना किनारी की साड़ी के अभाव में, हल्के रंग में रँगी अपनी पुरानी साड़ी पहन ली थी। विधवा की वह ध्वज रामबाबू की माँ के क्रोध को भड़काने के लिए पर्याप्त थी। उसे तो एक बहाना चाहिए था और तब सरोज पर क्रमशः डाट-फटकार, गाली-गलौज और लात-घूँसे की बौछार जारी हो गई। जो चीज सामने पड़ती उसीसे रामबाबू की माँ सरोज को पीटना शुरू कर देती। और सरोज की देह जैसे वज्र बन गई थी कि इतनी मार पड़ने पर भी वह टूटती नहीं थी, बिखरती नहीं थी—केवल असह्य पीड़ा से काँपकर रह जाती !.....

योगेन्द्र संकल्पात्मक भाव से घर की ओर चला। उसके मस्तिष्क के सारे प्रश्न-चिन्ह मिट चुके थे, उसके मन में कोई दुविधा नहीं थी—कोई भय नहीं था। उसका अंग-प्रत्यंग अचला के स्पर्श-सुख से प्रफुल्लित था। उसके चारों ओर अचला का सरल सुन्दर मुखड़ा प्रदीप्त हो रहा था। उसके कानों में अचला की स्वर-लहरी गूँज रही थी और वह अपनी कल्पना में बावला बना चला जा रहा था। उसके सामने न खेत थे, न खलिहान; न सूरज था, न आसमान; न गाँव था, न गाँव के मकान; और न कोई राह थी, न कोई पहचान। आज जीवन

में पहली बार शायद वह इतना भावुक, इतना काल्पनिक, इतना स्नेह-मय और इतना बावला हो रहा था।·····वह देह पर लिपटे चादर के नीचे अपने हाथ बाँधे, सिर झुकाए, चला जा रहा था कि उसके कान में किसी का क्रन्दन सुनाई पड़ा। उसने चौंककर सिर उठाया, तो देखा कि वह अपने घर के समीप आ चुका है। उसके पिता बरामदे में चहलकदमी कर रहे हैं और सरोज भाभी का करुण क्रन्दन सारे वातावरण को बोझिल और मनहूस बनाए है। अचानक ही उसकी रंगीन कल्पना के तार टूट गए—किसी तीव्रतम चीज के आकस्मिक आघात से उसका मस्तिष्क झनझना उठा, उसके चेहरे की स्निग्धता गायब हो गई और उसके मस्तिष्क में एक भयंकर प्रश्न गूँज उठा—'यदि सरोज की जगह अचला होती तो ?'···क्रोध से उसका चेहरा तमतमा उठा, घृणा से उसकी मुखाकृति बिगड़ उठी और मजबूरी से उसकी आँखें छोटी हो गईं।

"कहाँ रहते हो आजकल ?"—रघूबाबू ने डाटकर पूछा।

योगेन्द्र की आत्मा चीख उठी, 'यह पिता नहीं राक्षस है।' लेकिन वह चुपचाप घर के भीतर जाने लगा कि रघुबाबू फिर गरज उठे—"उधर कहाँ जा रहे हो ? पहले मेरे सवाल का जवाब दो। अपने को तुमने समझ क्या रखा है ?"

"आपके पास केवल प्रश्न-ही-प्रश्न हैं, लेकिन मेरे पास आदमियत के सिवा कुछ भी नहीं है। आप यहाँ चुपचाप खड़े हैं, भाई जी मुँह लटकाये बैठे हैं और उधर मेरी माता जी दानवी की तरह भाभी की जान लेने पर तुली हैं·····।"

"जोगी जी !"—रामबाबू चीख उठे।

"कहिये !"—योगेन्द्र क्रोध पीता हुआ शान्तिपूर्वक बोला।

रामबाबू की भृकुटी तन गईं। उन्होंने आँखें तरेरकर पूछा—"माँ को दानवी कहते तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

"किसी को कोई पद अनायास ही नहीं मिल जाता—कर्म से ही

माँ की या दानवी की उपाधि मिलती है। और भाभी पर इस तरह दिन-रात जुल्म ढाकर वह माँ नहीं—दानवी ही बन सकती है।"—योगेन्द्र ने कहा।

रघूबाबू लपककर योगेन्द्र को मारने दौड़े, किन्तु पास पहुँचकर रुक गए और क्रोध से काँपते हुए बोले—"मैं तेरी जीभ पकड़कर खींच लूँगा। जिसने जन्म दिया उसीको गाली देता है ? नमकहराम !"

"और मेरे हृदय में दया, प्रेम और सचाई किसने पैदा की ? पाप को पाप समझने की क्षमता किसने दी ?·····आप व्यर्थ कुपित होते है बाबूजी! मै कोई दूध पीता बच्चा नहीं हूँ कि मार-पीट से डर जाऊँगा।"

रामबाबू उठकर खड़े हो गए। उन्होने महसूस किया कि योगेन्द्र उनकी उपेक्षा कर रहा है। इसलिए उन्होंने अत्यधिक ऊँची आवाज मे ललकारकर कहा—"तू बच्चा नहीं है तो निकल जा घर से। नहीं तो गला दाब दूँगा।"

"आपे से बाहर न जाइये भाई जी ! किसी का गला दाबना आसान नहीं है और घर में जितना आपका अधिकार है, उतना ही मेरा भी। आप वह दिन भूल गए जब छोटी भाभी ने आपके अनाथ बच्चे को अपना बच्चा समझकर पाला-पोसा। जितना अत्याचार आप छोटी भाभी पर करते हैं, उतना ही अत्याचार अगर आपकी पत्नी पर होता तो आपका मन कैसा होता। जानवरों की तरह आप सब मिलकर एक कमजोर और मजबूर औरत की जान लेने पर तुले हैं। आप इसी-में अपना पुरुषार्थ और गौरव समझते है। लेकिन जिस रात निरसू ठाकुर आपकी सेवा में आया था उस रात आपकी बहादुरी और पौरुष का ओज कहाँ दुबक गया था। माफ कीजिएगा—मैं तो इस घर में जन्म पाकर ही ग्लानि से मरा जा रहा हूँ।"

'तो मर जा कुल-कलंकी ! मेरे सामने से दूर हट !"—रघूबाबू कड़क उठे।

योगेन्द्र क्रोध की घुटन से उन्मादी हो उठा—"मैं कुल-कलंकी हूँ, लेकिन आप लोग समाज-द्रोही हैं, देश-द्रोही हैं। आज के युग में आप लोगों का कोई स्थान नहीं है। आप लोग जुल्मी हैं ..... ढोंगी ... ...।" और वाक्य के बीच में ही रघूबाबू ने योगेन्द्र के गाल पर भरपूर तमाचा जमा दिया।

योगेन्द्र का मुँह सूख गया, उसकी आँखें खुली रह गईं। होश आने के बाद पहली बार उसे मार पड़ी थी। रघूबाबू ने जवान बेटे को मारकर महसूस किया कि उन्होंने कितना बड़ा अन्याय किया है। वह आश्चर्य और ग्लानि से झुक गए। लेकिन अपनी भूल स्वीकार करना उन्होंने कभी नहीं सीखा था। इसलिए अन्तर के भावों को दाबे, ऊपर से वह वैसे ही क्रुद्ध और बौखलाए-से बने रहे। क्षण-भर वहाँ भयंकर शान्ति व्याप गई। सरोज का क्रन्दन उस शांति को मुखरित कर रहा था। दिन ढल रहा था, पेड़ों की फुनगियों पर, सूरज की किरणें पिघल रही थीं, दूर पर आठ-दस गायों की टोली धूल उड़ाती चली जा रही थी और आम की गाछी में अंधकार अपनी जगह बनाने लगा था।

योगेन्द्र चोट खाये गाल पर हाथ रखे चुपचाप घर में चला गया। आँगन में उसकी भाभी सिर झुकाये बैठी सुबक रही थी। उसकी साड़ी जहाँ-तहाँ से फट गई थी, धूल और कालिख से पुती साड़ी में लिपटी उसकी देह रह-रहकर काँप उठती। योगेन्द्र ने किंचित् दृष्टि घुमाकर देखा, उसकी माँ रसोईघर के दरवाजे पर बैठी हुक्का पी रही थी। वह धीरे-धीरे सरोज के पास गया और आहिस्ता से बोला—"भाभी!"

"... ... ... ।"

"चलो मेरे साथ। लाइब्रेरी में रहना। उठो!"

"हाँ-हाँ, ले जाओ इस चुड़ैल को। मैं इस कलमुँही (कालिख-पुते मुँह वाली) को देखना भी नहीं चाहती।"—योगेन्द्र की माँ फूत्कार कर उठी। योगेन्द्र ने कोई जवाब नहीं दिया। उसके चेहरे

पर तूफान-जैसी शांति काँप रही थी।

सरोज उठ खड़ी हुई। योगेन्द्र ने उसकी पीठ पर हाथ का सहारा देकर चलने का संकेत किया। उसने देखा, सरोज की दोनों कोहनियों से खून बह रहा था। बाहर दालान पर रामबाबू और रघू चुप-चाप बैठे थे। लेकिन योगेन्द्र से किसी ने कुछ नहीं कहा। रामबाबू कुछ कहना ही चाहते थे कि उनकी नजर योगेन्द्र के चेहरे पर जा पड़ी—वहाँ शांति का तूफान काँप रहा था। बाहर गाँव के पड़ोसी अपनी-अपनी ठुड्डियों पर उँगली रखे आस-पास के घरों के दरवाजे पर इकट्ठे खड़े थे। योगेन्द्र सबोंको अनदेखा करता हुआ लाइब्रेरी की ओर चलता चला गया। सरोज उसके पीछे-पीछे चल रही थी। पश्चिम में सूरज की प्रखरता मद्धिम हो चली थी और योगेन्द्र तथा सरोज की परछाईं बहुत लम्बी होकर पीछे घर की दीवारों से दूर हटती जा रही थीं ··· ··· दूर ··· ··· बहुत दूर।

× × ×

सरोज के जाते ही रामबाबू का बच्चा शोर मचाने लगा। वह किसी की गोद में जाने को तैयार नहीं था। रो-रोकर वह जान देने पर उतारू था। उसने किसी दूसरे के हाथ से दूध पीना भी छोड़ दिया। सारा घर परेशान था। रामबाबू घर के भीतर-बाहर कर रहे थे। उनकी माँ बोल उठती—"उस डायन ने इस पर भी जादू कर दिया है।" और रामबाबू आँखें तरेरकर अपनी माँ की ओर देखते। माँ सहमकर चुप हो जाती। रघूबाबू शिला की तरह निर्लिप्त बैठे रहे। रामबाबू अपने पिता से कुछ निवेदन करने बार-बार घर से हिम्मत कर बाहर आते, लेकिन रघूबाबू की मुद्रा देखते ही उनकी जबान सट जाती।

घर की परेशानी बढ़ती ही गई। रोते-रोते बच्चा बेदम हो रहा था। रामबाबू का हृदय करुणा से भर उठा। इस बार वह हिम्मत करके बाहर आये और बोले—"बाबूजी, यह बच्चा तो किसी तरह

मानता ही नहीं। क्या किया जाय ?"

"इसका भी गला घोंटकर मार दो। मैं निर्वंश ही मरूँगा।"—रघूबाबू फट पड़े।

"लेकिन इस तरह पत्थर बनने से भी तो काम नहीं चलेगा बाबूजी"!—रामबाबू ने गिड़गिड़ाकर कहा। रघूबाबू ने नजर उठाकर अपने बड़े बेटे के चेहरे को देखा—दोनों की आँखें मिलीं, दोनों में कुछ मूक संभाषण हुआ। रघूबाबू का अंतर्मन ग्लानि से कराह उठा। फिर भी वह चीख पड़े; जैसे उन्माद का दौरा हुआ हो—"तो क्या चाहते हो ? जिन हाथों से अपने जवान बेटे को मारा है वे ही हाथ अब उसके सामने पसारने जाऊँ ? यह कभी नहीं हो सकता !"

"तो मुझे आज्ञा दीजिए !"

"जो तुम्हारे जी में आये करो—मेरे जी में जो कुछ आया वह मैंने किया। जिस बेटे को कभी आज तक छूआ नहीं, उसे आज जवानी में मारकर बे-आबरू कर दिया।"—रघूबाबू, पता नहीं क्रोध से या पश्चात्ताप से, काँप रहे थे।

रामबाबू ने लाइब्रेरी पहुँचकर देखा, वहाँ अचला और डाक्टर हसन भी बैठे थे। उन लोगों को देखकर रामबाबू झेंप गए। रामबाबू को उन लोगों की उपस्थिति अच्छी नहीं लगी। लेकिन अपने मन के हीन भाव को वह पी गए। डाक्टर हसन ने उन्हें देखते ही पूछा—"कहिए रामबाबू, आज अपनी भावज को ही घर से निकाल दिया ?"

"अरे नहीं डाक्टर साहब,"—रामबाबू ने कृत्रिम हास्य से कहा—"यह जोगी पागल हो गया है। इतनी सारी किताबें पढ़ गया है, लेकिन बचपना नहीं गया।"

योगेन्द्र चुपचाप बैठा था। अचला ने छूटते ही कहा—"आप सब मिलकर सरोज दीदी पर जुल्म करते हैं और उल्टे जोगी जी को पागल बताते हैं। स्नेहाभिव्यक्ति का अच्छा ढंग निकाला है।"

रामबाबू ने किंचित् व्यंग और रहस्यात्मक ढंग से अचला की ओर

देखा, लेकिन उन्हें बड़ी निराशा हुई—अचला के मुख-मंडल पर किसी किस्म का पश्चात्ताप, ग्लानि, भय या कलुषता के चिन्ह नहीं थे। उसका मुख-मंडल सचाई और क्षोभ से दीप्त हो रहा था। रामबाबू ने कुछ अटकते हुए कहा—"तुम्हारा गलत ख्याल है। हम लोग बहू पर कोई जुल्म नहीं करते। माँ का स्वभाव कुछ कड़ा है। सो यदा-कदा वह इस पर बिगड़ उठती हैं।"

"लेकिन आपके पिता जी के हुक्म के बिना तो आपके यहाँ कोई काम नहीं होता।"—अचला ने व्यंग से कहा।

रामबाबू ने निरुत्तर होना पसंद नहीं किया। बोले—"अरे, वह वृद्ध आदमी हैं। कभी-कभी बेकार की बातें भी बोल जाते हैं।"

"अच्छा परिवार है—एक का स्वभाव कड़ा है, दूसरे वृद्ध होने की वजह से बेकार बातें बोल जाते हैं·····और आप ? क्या आपने उस अन्याय को रोकने की कभी कोशिश की ?"

"देखो अचला !"—रामबाबू ने निरुत्तर होकर बात का रुख बदलते हुए कहा—"यह सब किसी का घरेलू मामला है। इसमें तुम्हें पड़ने की जरूरत नहीं।"

"फिर आप लोग क्यों किसी के घरेलू मामले में दखल देते हैं। कोई किसी के यहाँ आता-जाता है, तो आप लोगों का कलेजा क्यों फटने लगता है ? एक निर्दोष और कमजोर विधवा की खाल खींचने को आप अपना घरेलू मामला समझें, लेकिन कोई स्वेच्छा से अपनी श्रद्धा भेंट करे तो आप उसे अपना वैदेशिक मामला समझकर चीखने-चिल्लाने लगें, बलवा करने पर उतारू हो जायँ—कोई रोक-टोक नहीं है। क्यों ?"—भावावेश से अचला का चेहरा लाल हो उठा था। अचला के व्यंग-बाण से रामबाबू तिलमिला उठे थे, लेकिन अपने बच्चे का मोह उन्हें परवश किये था।

डाक्टर हसन ने विक्षुब्ध वातावरण में परिवर्तन लाने के विचार से कहा—"खैर, हटाइये इन बातों को। आप यह बताइये कि खैरियत

तो है ? कैसे इधर आना हुआ ?"

"बहू को घर लिवा जाने को यहाँ आया हूँ।"

"भाभी अब यहाँ से नहीं जायँगी।"—योगेन्द्र भड़क उठा।

रामबाबू ने बड़प्पन से समझाते हुए कहा—"बाबले नहीं बनते। तुम अभी हम लोगों के सामने बच्चे ही हो। तुम्हें पता नहीं कि दुनिया कितनी टेढ़ी है। कल सुबह होते ही गाँव वाले अण्ट-शण्ट बकने लगेंगे। और तब अपने परिवार की प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी।"

"तो एक मासूम औरत की लाश पर आप अपने परिवार की प्रतिष्ठा रखना चाहते है ? मुझे ऐसी बेहूदी प्रतिष्ठा का मोह नहीं है। भाभी हर्गिज घर नहीं जायँगी।"—योगेन्द्र क्रोध से जल रहा था।

"अरे कौन किसकी लाश पर प्रतिष्ठा कायम रखना चाहता है ?"

"आप लोग भाभी की लाश पर अपनी प्रतिष्ठा कायम रखना चाहते हैं।"

"पागल मत बनो !"—रामबाबू ने हँसते हुए कहा और तब सरोज की ओर मुड़कर वह स्नेह से बोले—"चलो बहू, घर चलो !"

"आप भाभी से क्यों कुछ कहते हैं ? जो कुछ कहना हो मुझसे कहिए। यहाँ मेरा हुक्म चलता है।"—योगेन्द्र ने कहा।

रामबाबू ने छूटते ही पूछा—"यह लाइब्रेरी तुम्हारी है ?"

"फिलहाल तो मेरी है ?"

"यह गाँव वालों की सम्पत्ति है। सुबह होते ही जब लोग सुनेंगे तो तुम्हारे सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें उड़ने लगेंगी और तुम्हें यहाँ से निकाल दिया जायगा। फिर कहाँ रहोगे ?"

"मैं कहीं भी झोंपड़ी बनाकर रह लूँगा। जायदाद में मेरा भी हिस्सा है। उसे तो कोई नहीं छीन सकता ?"

डाक्टर हसन ने देखा कि व्यर्थ ही बहस की पूँछ बढ़ती जा रही है। उन्होंने बहस खत्म करने के विचार से कहा—"क्यों सरोज देवी ? —आप घर जाना चाहती हैं ?"

"नहीं।"

"अरी बहू,"—रामबाबू ने नम्रता से कहा—"बच्चा रो-रोकर जान देने पर उतारू है। ग्यारह बजने को आये, लेकिन उसने तुम्हारे घर छोड़ने के बाद से दूध तक नहीं पिया है। वास्तव में तुम ही तो उसकी माँ हो!"

"अब आये अपने मतलब की बात पर!"—अचला ने व्यंग से कहा।

डाक्टर हसन बोल उठे—"तब तो सरोज को अवश्य जाना चाहिए। लेकिन कुछ शर्तें हैं रामबाबू!"

"कहिये!"

"आपको वचन देना होगा कि आज से सरोज को कोई भी मारे-पीटेगा नहीं। इसकी जिम्मेवारी आपको लेनी होगी।"

"मैं वचन देता हूँ। आज से यदि कभी यह दुखद बात हुई तो मैं भी घर छोड़ दूँगा।"—रामबाबू ने ईमानदारी से कहा।

डाक्टर हसन ने फिर शांत भाव से कहा—"एक और शर्त है। हम लोगों ने अभी-अभी तय किया है कि सरोज अब से अपना पढ़ाई शुरू करेगी। अतः आपको वचन देना होगा कि सरोज प्रतिदिन लाइब्रेरी में आया करेगी। और आप लोग उसे रोकेंगे नहीं।" रामबाबू क्षण-भर मौन रहे, लेकिन कोई और उपाय न देखकर उन्हें 'हाँ' करना पड़ा। बच्चे की हालत सुनकर सरोज भी हिल गई थी। योगेन्द्र ने डाक्टर हसन की ओर देखा और चुप हो रहा। सरोज घर चली गई।

: २० :

डाक्टर हुसन सुबह की चाय पीकर दवाखाने में आ बैठे। उनकी दिनचर्या शुरू हो गई। गाँव वाले डाक्टर हुसन के विरुद्ध भीतर-ही-भीतर उबल रहे थे। सबों की आँखों में धर्म-गत संस्कारों के विनाश-कारी स्फुलिंग केन्द्रित हो रहे थे, लेकिन ऊपर से सब-के-सब कृत्रिम शांति के भ्रामक आवरण से संपृक्त थे। बीमारियाँ तो समय-असमय देखती नहीं। सो मजबूर होकर लोगों को डाक्टर हुसन के पास आना ही पड़ता। डाक्टर हुसन लोगों को दवा देने में मशगूल हो गए।

अचला अभी डाक्टर हुसन की कोठरी में बैठी चाय पी रही थी। वह अनमने भाव से खिड़की के बाहर देख रही थी जहाँ निर्मल नीले आकाश के सिवा और कुछ नहीं था—हाँ, एक पेड़ की फुनगी भी नजर आ रही थी, जिस पर सूरज की किरणें चकमक कर रही थीं। वह सूने आकाश में दृष्टि गड़ाये थी—दूर, बहुत दूर एक चिड़िया उड़ी जा रही थी—अकेली! अचला की दृष्टि पेड़ की फुनगी पर लौट आई और तब उसे चिड़िया की मूर्खता पर हँसी आ गई। उसके ओठों पर वेदना-पूर्ण मुस्कराहट की एक कँपकँपी आई और फिर वह मायूस हो गई।···उसने सुना, कोई कह रहा था—'तू भी तो अकेली है। तेरे लिए तो पेड़ की फुनगी भी नहीं। बस, सामने शून्य पथ प्रशस्त है और तुझे उस पर चलना है—पता नहीं कब तक, कहाँ तक! तू दूसरों को देखकर हँसती है, गरजती है, लेकिन स्वयं को नहीं देखती! तू कितनी उपेक्षित है, कितनी दयनीय, कितनी मूर्ख·····!'

"तू महामूर्खनी है,"—योगेन्द्र ने अचानक ही प्रवेश करते हुए कहा,—"अकेली ही सभी चाय पिये जा रही है।"

अचला किंचित् चौंककर मुस्कराती हुई बोली—"मुझे मालूम नहीं था कि आप भी एक मूर्ख हैं। आइये, नोश फर्माइये!"

"शुक्रिया!" और दोनों ठठाकर हँस पड़े। वातावरण में जिन्दगी

आ गई। अचला ने तपाक से एक खाली प्याला लाकर चाय बना दी।

"तुम्हें आज से अपने काम में जुट जाना है।" योगेन्द्र ने चाय की चुस्की लेते हुए कहा।

"किस काम में ?"—अचला कुछ याद करती-सी बोली।

"गाँव की अनपढ़ स्त्रियों को तुम रोज तीन बजे दिन से साढ़े चार बजे तक पढ़ाया करोगी। वाह, इतनी जल्दी भूल गईं ?"

"ओह, लेकिन···क्या कोई स्त्री तैयार भी है ?"

"ब्राह्मणों की स्त्रियाँ तो शायद ही आयें! हाँ, खेतिहर मजदूरों की कुछ स्त्रियाँ तो आ ही जायँगी। और भाभी आयँगी।"

"क्या तुम्हारे बाबूजी दीदी को आने देंगे ?"

"राम कहो! वह तो कल से और भी जल-भुन गए हैं। गाँव वाले अलग तने बैठे हैं। कल की घटना ने आग में घी का काम किया। लोग अब यह सोचने लगे हैं कि डाक्टर साहब ही सब खुराफातों की जड़ हैं। मुझे तो भय है, कहीं लोग कुछ भयंकर काम न कर बैठें!"

"तुम निरर्थक भय से ही आक्रांत बनेर होगे या कुछ करोगे भी! डाक्टर साहब को सभी विपत्तियों की जड़ में हम लोग छिपे बैठे हैं। लोग मेरे-उनके सम्बंध में तरह-तरह की बातें करते हैं और तुम हो कि जोगी बने फिरते हो। आखिर कब तक अनुचित लाभ उठाते रहोगे ?"—अचला का स्वर दुःख और ऊब से भीगा हुआ था। योगेन्द्र चुप रहा। अचला ने झुँझलाकर कहा—"बोलते क्यों नहीं ? यदि तुम्हें डर लगता है तो मुझसे कहो—मैं तुम्हारे बाबूजी से बातें करूँगी।"

योगेन्द्र घबरा-सा गया, लेकिन घबराहट छिपाता हुआ जल्दी से बोल उठा—"नहीं-नहीं, तुम्हें बात करने की जरूरत नहीं है। मैं स्वयं सब ठीक कर लूँगा।"

"तुम खाक ठीक कर लोगे! बाबूजी के सामने जाते ही तुम्हारे

मुँह में जैसे दही जम जाता है।"

"तुम बहुत जल्दी घबरा जाती हो अचला ! जरा सोचो तो—हम लोगों का साध्य-प्रेम तो है नहीं। यह तो साधन-मात्र है। हम लोगों को सामाजिक कार्य करने है, गरीबों की हालत सुधारनी है, जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलना है—एक नई क्रांति पैदा करनी है। अगर जल्दी में घबराकर हम लोगों ने कुछ कर दिया तो सारा प्लान चौपट हो जायगा। लोग जब मुझे चरित्र-हीन समझने लगेंगे तब मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा। मेरी बातों को कोई भी महत्त्व नहीं देगा। सारी प्रतिष्ठा धूल···।"···

"बस-बस, रहने दो अपना भाषण।"—अचला क्रोध से तमतमा उठी।

"मै भाषण नहीं दे रहा हूँ। तथ्य कह रहा हूँ। आखिर हम-तुम दो तो हैं नहीं। हम लोग एक-दूसरे के हो चुके हैं। समाज को बता देने की रस्म केवल बाकी है। वह भी समय आने पर हो ही जायगा। अभी सब-के-सब उबले हुए हैं। ऐसी हालत में कोई नई बात उठाना, जले पर नमक छिड़कना होगा।"

"काश ! तुम मेरी वेदना को भी महसूस कर पाते !" अचला की मासूम आँखों में भिक्षुणी की-सी दीनता झलक रही थी।

योगेन्द्र का अचेतन मन चीख उठा। किसी अनजान भाव की पीड़ा से वह कराह उठा। किसी अपरिचित स्वर की गूँज से उसके मस्तिष्क में द्वन्द्व भाव उठ खड़े हुए और क्षण-भर में निरसू की आवाज बिजली की तरह उसके चारों ओर कौंध गई····· 'जोगी बेटा, सामने आकर एक मासूम बच्ची के प्यार को तो तू माथे लगा नहीं सका—समाज से फिर तू क्या जूझेगा ?' ·····उसे लगा, अचला की मूक आँखों से कुछ इसी तरह का व्यंग-बाण घूर रहा है !

अचला ने शांत भाव से करुण स्वर में कहा—"जोगी, समाज के बंधन को बधन मानकर ही हम उसे तोड़ सकते है। जो

कुछ है—अच्छा या बुरा—उसे स्वीकार करो। फिर उसे बदल दो, यदि वह बुरा है तो! शादी बुरी चीज नहीं, इसकी प्रथा बुरी है। अन्तर्जातीय शादी प्रथानुकूल नहीं है, लेकिन इच्छानुकूल तो है; मानवीय तो है। समाज इसे नहीं मानता। तुम प्रथा के बंधनों को तोड़ दो, लेकिन जो इच्छानुकूल है, मानवीय है, उसे स्वीकार करो। इस बंधन से क्यों भागते हो? जरा सोचो तो सही कि मैं डाक्टर के साथ रहकर उनका कितना बड़ा अहित कर रही हूँ! आखिर मेरी भावनाओं की भी तो कुछ कीमत है, मैं भी कुछ होना चाहती हूँ और जब तक मेरी कुछ होने या बनने की बात की सही प्रतिध्वनि नहीं आती, तब तक मेरा जीवन-चरित्र कोई महत्व नहीं रखता। आज मैं लोगों की फुसफुसाहट-भर महसूस करती हूं, लेकिन मैं प्रतिध्वनि सुनना चाहती हूँ, पहाड़ों या पेड़ों की नहीं, समाज की कि·····'अरे अचला जोगी की है, अचला विवाहित है!'·····एक बार तुम बोल दो जोगी कि पूरा समाज प्रतिध्वनि कर उठे—चीख उठे। फिर मैं मरने से भी नहीं डरूँगी। फिर तुम मुझे कहीं भी रख दो—मैं जी लूंगी।" अचला का स्वर भावावेश से अवरुद्ध हो गया।

योगेन्द्र खिड़की के बाहर देखता रहा·····विस्तृत नीले आकाश में कुछ नहीं, बस, केवल एक पेड़ की झुकी हुई अकेली फुनगी···और वह सिहर उठा।

"तुम बोलते क्यों नहीं?" अचला ने योगेन्द्र के दोनों हाथ पकड़कर झकझोर दिये।

"क्या बोलूँ, जब तुम मेरी आवाज सुन नहीं सकतीं? तुम तो औरों की प्रतिध्वनि सुनना चाहती हो!" योगेन्द्र एक लम्बी साँस खींचता हुआ बोला।

अचला ने रोने-जैसी मुस्कराहट से कहा—"तुम्हारी आवाज सुनकर ही तो मैं तुम्हारी हो गई, लेकिन यह जो फुसफुसाहट का स्वर हवा में तैर रहा है, यह मेरे अस्तित्व को चुनौती दे रहा है जोगी!

मैं चाहती हूँ कि तुम्हारी आवाज इतनी बुलन्द हो कि उससे टकराकर यह फुसफुसाहट का स्वर बरस पड़े। सन्देह के वातावरण से कहीं सुखकर युद्ध का वातावरण होता है। युद्ध में शरीर मरता है, लेकिन सन्देह में आत्मा मर जाती है। सन्देह जीवितों की कब्र है।"

"मुझ पर विश्वास है या नहीं ?"

"है।"

"तुम्हें अपने पर विश्वास है या नहीं ?"

"है।"

"फिर दुनिया की परवाह क्यों करती हो ?" योगेन्द्र ने कुर्सी से उठते हुए निश्चित स्वर में पूछा।

"विश्वास दुनिया के लिए ही किया जाता है। विश्वास के बाद कर्तव्य शुरू होता है—जिसका एक-मात्र क्षेत्र दुनिया है। विश्वास को जब कर्तव्य का क्षेत्र नहीं मिलता, तब वह धारणकर्ता की आँखों में ज्योति के बदले आवरण बनकर फूल जाता है। और अब मेरी आँखों की ज्योति बस बुझने ही वाली है।"

"तुम पागल हो गई हो। तुम्हें मालूम नहीं है, मैं तुम्हारे बिना एक पग भी नहीं चल सकता। बस मेरी-तुम्हारी समझ में फर्क यही है कि तुम अपने लिए दुनिया की चिंता करती हो, मैं दुनिया के लिए अपनी चिंता करता हूँ। खैर, हटाओ इन बातों को। वाद-विवाद से निष्कर्ष मिले तो मिले, निश्चित नहीं मिलता। मुझे अभी हरिजनों की बस्ती में जाना है। तुम ठीक ढाई बज लाइब्रेरी चली आना!" और योगेन्द्र चल पड़ा। दरवाजे पर पहुँचकर वह रुक गया और कुछ सोचकर बोला—"व्यर्थ की बातों में अपना दिमाग मत ख़राब किया करो। कुछ पढ़ती-लिखती रहो। हृदय के साथ-साथ बुद्धि का विकास भी आवश्यक है।" आखिरी वाक्य कहते-कहते वह मुस्करा उठा और दरवाजे के बाहर हो गया।

अचला ठगी-सी देखती रह गई।

: २१ :

"क्यों दीदी, तुम्हारे श्वसुरजी ने कुछ बाधा तो नहीं डाली ?" अचला ने सरोज से पूछा।

पौने तीन बजे दिन तक न तो योगेन्द्र का कहीं पता था और न ही पढ़ने वाली स्त्रियों का। सरोज अभी-अभी पहुँची थी। उसने हँसते-लजाते हुए कहा—"ज्येष्ठ जी (रामबाबू) ने मुझसे पहले ही कह दिया था कि बाबूजी के बोलने-भूँकने की परवाह न करना। सो बाबूजी क्रोध बोलते रहे, लेकिन मैं चुप-चाप सिर नीचा किये चली आती रही।"

"और माता जी ?"

"वह तो अब मुझसे बोलती भी नहीं। ज्येष्ठजी ने उन्हें बहुत डाटा-डपटा है।"

"हाँ, अब क्यों नहीं डाटेंगे ! स्वार्थवश भी आदमीयत पैदा होती है।" अचला ने सरोष कहा। सरोज कुछ नहीं बोली। दोनों चुपचाप बैठी रहीं।

कुछ देर बाद सरोज ने सकुचाते हुए पूछा—"तुम डाक्टर के साथ ही रहती हो ?"

"हाँ ! क्यों ?"

"कुछ नहीं वैसे ही पूछ बैठी।"

"फिर भी !"

"बड़े अच्छे भाग्य हैं तुम्हारे। उनके जैसा देवता आदमी तो मैंने देखा ही नहीं।" सरोज विभोर हो उठी। फिर बोली "तुम ही उन्हें खाना बनाकर खिलाती होगी ?"

"हाँ !"

"क्या वह भी यहाँ पढ़ाने आया करेंगे ?"

"नहीं !" और तब सरोज कुछ उदास हो गई। अचला के होठों के कोनों पर किंचित मुस्कराहट कौंध गई। वह कुछ कहने ही जा रही थी कि एक लड़की आती दीख पड़ी। अचला ने उसे दूर से ही

पहचानने की कोशिश की और जब पहचान नहीं सकी तो बोली—"यह कौन आ रही है ?"

"यह नेताजी की घर वाली है। आज सुबह मैंने इसे बताया था कि आज से औरतों को पढ़ाया जायगा। बेचारी बड़ी दुखी है !" अचला ने सरोज के चेहरे पर सहानुभूतिपूर्ण भाव देखे और फिर नेताजी की पत्नी को देखने लगी। अब वह पास आ गई थी। अचला ने देखा वह बिल्कुल किशोरी थी। अभी उसके शरीर पर यौवन के चिन्ह भी भली भाँति प्रस्फुटित नहीं हुए थे। उसके चेहरे पर आँखों में चंचलता दौड़ रही थी।

और तब धीरे-धीरे आठ स्त्रियाँ इकट्ठी हो गईं, जिनमें नेताजी की पत्नी और सरोज को छोड़कर बाकी स्त्रियाँ नीची जाति के लोगों की थीं। योगेन्द्र बरामदे में बैठा रहा और सभी स्त्रियों को लेकर अचला लाइब्रेरी के भीतर हॉल में चली गई। पढ़ाई शुरू हो गई।

नेता जी की पत्नी अपने पति के आदेश के विरुद्ध पढ़ने आई थी। सरोज से बातें करने के बाद उसने अपने पति से पूछा, लेकिन नेताजी ने यह कहकर कि···"तू पढ़-लिखकर क्या डिप्टी बनेगी ? खबरदार जो घर के बाहर कदम रखा ?"···अपनी पत्नी को डपट दिया था। वह भी चुप हो रही। और नेताजी जब खा-पीकर सो गए तब उनकी पत्नी चुपचाप लाइब्रेरी पहुँच गई।

कुछ ही देर बाद नेताजी की नींद टूट गई। उनकी पत्नी का घर में कहीं भी पता नहीं था। नेताजी सिर से पाँव तक जल उठे। क्रोध से काँपते हुए वह रघूबाबू के पास पहुँचे। रघूबाबू पहले से ही जले-भुने बैठे थे।

नेताजी पहुँचते ही चीख उठे—"देखो रघू भाई, यह डाक्टर पूरे गाँव की इज्जत-आबरू पर हाथ साफ करके दम लेगा। पता नहीं मेरी घर वाली तक उसकी पहुँच कैसे हो गई कि वह भी मेरी आज्ञा के विरुद्ध पढ़ने चली गई है।"

"इसमें डाक्टर साहब का क्या दोष है कि उन पर गरम हो रहे हो ?" रामबाबू ने छूटते ही कहा ।

रघूबाबू गरज उठे—"तो और किसका दोष है ?"

"आपके लाड़ले पुत्र का, जो घूम-घूमकर घर-घर में अलख जगाये फिरते हैं । खुद पढ़-लिखकर पंडित हो गए हैं, तो सोचते हैं कि औरतों को घर-गृहस्थी छोड़कर विद्याध्ययन में जुट जाना चाहिए, लाज-लिहाज त्यागकर बेहयाई पर उतर आना चाहिए !" रामबाबू एक साँस में बोल गए ।

नेताजी ने क्रोध से काँपते हुए कहा—"यह सब जोगीपना मेरे साथ नहीं चलेगा । ऐसे कितने पढ़े-लिखे मारे-मारे फिरते हैं । मैं देहाती नहीं हूँ कि रौब खा जाऊँगा । मैं भी समाज-सेवा करना जानता हूँ । इसी काम में अपनी पूरी जिन्दगी लगा दी । लेकिन दूसरों की बहू-बेटियों को फुसलाकर घर से भगा ले जाने का काम आज तक नहीं किया ।"

नेताजी इतने ऊँचे स्वर में बोल रहे थे कि अड़ोस-पड़ोस के कुछ लोग वहाँ इकट्ठे हो गए ।

एक ने बढ़कर पूछा—"क्या बात है नेताजी ? किस पर खफा हो रहे हो ?"

"अरे जुल्म हो रहा है, जुल्म ! अब यह गाँव रहने के काबिल नहीं बचा । आज मेरी घर वाली भाग निकली है, कल तुम्हारी घर-वली भाग निकलेगी ।"

"कहाँ भाग निकली है तुम्हारी घर वाली ? कौन भगा ले गया है ?"—उस आदमी ने पूछा ।

"और कौन भगाएगा—इसी म्लेच्छ डाक्टर और जोगी दोनों ने मिलकर पूरे गाँव को उजाड़ फेंकने का निश्चय कर लिया है ।"—लग रहा था जैसे क्रोधातिरेक से नेता जी रो देंगे ।

रघूबाबू, जो अब तक चुप बैठे थे सहसा उठ खड़े हुए और बोल

उठे—"तो यहाँ शोर-गुल करने से क्या होगा ? अब अपनी घर वाली की जगह खुद चूड़ियाँ पहनकर घर में जा बैठो।·····हुं·····शर्म भी नहीं आती।"

"मुझे क्यों शर्म आयगी ? मैं ऐसा-वैसा आदमी नहीं हूं, रग्घू-भइया ! और गाँव के लोग भी मुर्दे नहीं हैं। ये लोग अपनी मान-मर्यादा के लिए जान तक दे देंगे। इन्होंने भी अपनी माँ का दूध पिया है। जब गाँव की प्रतिष्ठा और धर्म ही मिट जायगा, तब ये लोग जीकर क्या करेंगे ?" नेताजी ने नीतिपूर्वक कहा।

बहुत-से लोग एक साथ बोल उठे—"ठीक कहते हो नेताजी ! हम लोग तैयार है ?'

और लगभग पच्चीस आदमियों का दल डाक्टर हसन और योगेन्द्र को गालियाँ देता हुआ लाइब्रेरी पहुँच गया।

योगेन्द्र लाइब्रेरी के बरामदे में बैठा था। भीड़ को देखते ही उसका माथा ठनका। लेकिन उसने अपने मन में डर को नहीं पनपने दिया। वह उठकर खड़ा हो गया।

नेताजी ने पहुँचते ही गाली देना शुरू किया—"दूसरों की बहू-बेटियों को फुसलाकर उन्हें पथ-भ्रष्ट करते तुम्हें शर्म नहीं आती ? यही पाप करने के लिए जोगी बने फिरते हो ?"

"आपका दिमाग तो नहीं खराब हो गया है ?" योगेन्द्र ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है, जिसे दुरुस्त करने हम लोग आए हैं।" नेताजी ने चीखकर कहा।

भीड़ में से कोई बोल उठा—"उल्टा चोर कोतवाल को डाटे। साला ढोंगी है।"

"खबरदार जो किसी ने गाली दी। जंगली कहीं·····।"

योगेन्द्र अभी पूरी बात कह भी नहीं पाया था कि किसी ने ईंट का एक टुकड़ा उसके सिर पर दे मारा। योगेन्द्र का सिर

घूम गया। चोट करारी थी। योगेन्द्र बरामदे का पाया पकड़कर बैठ गया। अचला तब तक बाहर आ चुकी थी। वह दौड़कर योगेन्द्र के पास जा पहुँची। योगेन्द्र के गिरते ही भीड़ में खलबली मच गई। नेताजी का चेहरा भय से काला पड़ गया। योगेन्द्र आखिर रघूबाबू का बेटा था, जिस रघू बाबू की कृपा पर ही गाँव के बहुत-से चूल्हे जला करते और नेताजी तो उनके आभार के बोझ को ढो पाने में भी असमर्थ थे। देखते-देखते भीड़ छँट गई। नेताजी भागकर डाक्टर हसन को बुलाने चले। डाक्टर हसन लाइब्रेरी की ओर ही चले आ रहे थे। योगेन्द्र के घायल होने की खबर सुनकर वह दवाखाने लौट गए और दवा आदि लेकर जल्दी-जल्दी कदम रखते हुए लाइब्रेरी पहुँच गए। रामबाबू भी अपनी माँ के साथ घटना-स्थल पर पहुँच चुके थे।

डाक्टर हसन ने घाव की परीक्षा ली। ठीक मस्तक के बीचो-बीच घाव लगा था। ईंट की नोक भीतर धँस गई थी और काफी खून वह चुका था। लेकिन योगेन्द्र होश में था।

पट्टी बँध जाने पर योगेन्द्र की माँ ने स्नेह से कहा—"चलो, घर चलकर आराम करो!"

"नहीं, यहीं ठीक हूँ।"—योगेन्द्र ने अनावश्यक दृढ़ता से कहा।

माँ अपनत्व भाव से गरज उठी—"तू व्यर्थ ही जिद पकड़ लेता है। चुप-चाप घर चल!"

योगेन्द्र चुप रहा। आखिर माँ हारकर चुप हो रही।

शाम हो चुकी थी। अरहर के खेत में गीदड़-समूह चीख उठा, गाँव के कुत्ते भोंकने लगे। दूर पर कोई मालगाड़ी सीटी बजाती चली जा रही थी और इस तमाम शोर-गुल के बावजूद गाँव के वायु-मंडल में एक भयंकर खामोशी तैर रही थी।

योगेन्द्र ने अपनी माँ से कहा—"अब तुम घर जाओ! रात उतर रही है।"

"फिर तू अकेला कैसे रहेगा ?" माँ ने स्नेह से पूछा।

"मैं अकेला नहीं हूँ। यह मेरे पास रहेगी।" योगेन्द्र ने अपना सिर किंचित् टेढ़ा करके अचला की ओर संकेत कर दिया।

माँ ने कुछ रुष्ट भाव से अचला की ओर देखा और उठकर जाने लगी। रामबाबू भी माँ के साथ हो लिए। चलते-चलते माँ ने अचला से कहा—"भोजन और दूध भेज दूँगी। इसे खिला-पिला देना !"

अचला गद्‌गद् भाव से माँ का जाना देखती रही। अंधकार सघन होता गया।

: २२ :

रात के दस बज रहे थे। लाइब्रेरी के भीतर एक लालटेन जल रही थी और लाइब्रेरी के बाहर काला घुप्प अन्धकार, हड्डी कँपा देने वाली भयङ्कर ठण्ड, सघन अरहर के खेत से यदा-कदा आती हुई खड़-खड़ाहट, ईख के खेत में किसी अज्ञात पशु के चलने-फिरने की आवाज और बस और कहीं कुछ नहीं—चारों ओर नीरवता !

योगेन्द्र लाइब्रेरी के भीतर वाली कोठरी में एक चौकी पर सो रहा था। अचला वहीं एक कुर्सी पर बैठी एकटक योगेन्द्र के मुख-मण्डल की ओर निहार रही थी। योगेन्द्र नींद में था। पता नहीं, दर्द से या किस कारण से, उसका चेहरा रह-रहकर तन जाता, उसकी भवें फैल जातीं और उसके दाँत कटकटा उठते। अचला करुणार्द्र होकर ताक रही थी, उसकी गीली और विभोर आँखें मानो कह रही थीं—'तुम्हारी सारी पीड़ा मुझमें समा जाये, तुम्हें कोई कष्ट न हो, क्योंकि इन तमाम विपत्तियों की जड़ में मैं हूँ। ओ जोगी, मुझे देखो—मुझे—जो तुम्हारा दुःख है, तुम्हारी पीड़ा है, तुम्हारी समस्या है ! मुझे दे

दो—अपनी सारी वेदना मुझे सौंप दो। मैं उसे सह लूँगी, पचा लूँगी; या नहीं तो बटोरकर, तुम्हारी याद लिये कहीं चली जाऊँगी।' ···

गन्ने के खेत से साँड़ हूँकड़ उठा !

योगी की नींद उचट गई ! उसने करवट बदली, देखा, अचला जगी बैठी है। योगेन्द्र के होठों पर हल्की मुस्कराहट काँप गई। वह स्नेह में डूबे स्वर में बोला—"मैं तुम्हें बहुत कष्ट देता हूं !"

"चुप-चाप सो जाओ !"—अचला ने योगेन्द्र की रजाई ठीक करते हुए कहा।

"सच अचला, मैंने आज तक तुम्हें कोई सुख नहीं दिया। और जिन लोगों के सुख की चिन्ता में मैं अपनी एकात्मकता खो बैठा हूँ, वे लोग मुझे ढोंगी और पातकी समझते हैं।"

"किसी के कुछ समझने से क्या होता है ? तुम उनकी चिन्ता मत करो !"—अचला ने यों ही सान्त्वना के लिए कुछ कह दिया।

"झूठे संस्कार, मान-मर्यादा और कृत्रिम यश के लोभ में मैं कायर बनता जा रहा हूँ। निरसू काका ठीक कहते हैं—ठीक करते हैं।··· अचला, अब जीवन के प्रत्येक मूल्य को बदलना होगा। व्यक्ति का आदर्श कागज की नाव है, जिसे नमूना या खिलौना बनाकर ही रखा जा सकता है—समाज के लिए इसकी कोई उपादेयता नहीं। कितना भी सँभालकर रखो—गलने की आशंका प्रत्येक स्थिति में बनी रहती है।"

"मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, ये सब बातें स्वस्थ होने पर स्वस्थ मस्तिष्क से सोच लेना। अभी चुप-चाप लेटे रहो !"

"अस्वस्थ शरीर, अस्वस्थ मस्तिष्क और अस्वस्थ समाज !" ··· योगेन्द्र के मुँह से अर्थपूर्ण हँसी फूट पड़ी।

अचला ने चौंककर योगेन्द्र के माथे पर हाथ रखा और घबराहट से भर गई—"तुम्हें तो बहुत बुखार है ! हाय भगवान् अब क्या करूँ ?"

"क्या करोगी ? कर भी क्या सकती हो ? सब-कुछ बीमार है, सब-कुछ सड़ गया है। अब इन तमाम चीजों का उपाय ऑपरेशन में है। देखती नहीं—ऊपर से कितनी शांति है। लगता है, जैसे पूरा देश बौद्ध गया का वट-वृक्ष हो और उसके नीचे बसने वाले—नेताजी, बाबूजी, भाईजी, दारोगा, गाँव वाले—सब-के-सब भगवान् बुद्ध के अवतार-से दीखते हैं—सौम्य, शांत, निर्लिप्त और अनासक्त; लेकिन उनके हृदय ··· मस्तिष्क-कर्म ··· छीः ! यह बीमारी भीतर की है अचला ! इसका ऑपरेशन होना चाहिए ··· ··· !"

"देखो जोगी, डाक्टर साहब आये हैं !"—अचला डाक्टर हसन को देखते ही उत्साहित हो उठी।

'क्यों ? खैरियत तो है ?"—डाक्टर हसन ने पहुँचते ही पूछा।

योगेन्द्र उन्हें शून्य दृष्टि से देखता रहा।

"इन्हें बहुत बुखार चढ़ आया है।"—अचला ने परिस्थिति की भयङ्करता जतलाने के लिए, अनजाने अत्यधिक घबराहट से कहा।

डाक्टर हसन ने योगेन्द्र का माथा छूकर देखा और थर्मामीटर लगा दिया।

"हाँ, बुखार तो तेज है ! कोई बात नहीं—एक-दो घण्टे में उतर जायगा।"

"लेकिन भीतर की बीमारी का क्या होगा ? वह तो खून में ही नहीं—आत्मा में समा गई है।"—योगेन्द्र ने अटपटे स्वर में कहा।

"आत्मा में कोई बीमारी नहीं समाती जोगी जी ! आप चुपचाप आराम से पड़े रहिए।"

और तीनों चुप हो रहे। डाक्टर हसन ने थर्मामीटर निकालकर देखा।

"कितना बुखार है ?"—अचला ने चिन्तातुर होकर पूछा। डाक्टर हसन ने थर्मामीटर अचला की ओर बढ़ा दिया। अचला ने लालटेन की रोशनी में थर्मामीटर देखा—एक सौ पाँच डिग्री से कुछ

ऊपर बुखार था। वह योगेन्द्र को निहारने लगी। डाक्टर हसन ने कागज के टुकड़े में दवा रखकर योगेन्द्र को खिला दी।

"इतना तेज बुखार क्यों हो गया डाक्टर साहब ?"

"लगता है, इस बुखार का इनके घाव से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"फिर ?"

"मलेरिया है।"—कहते हुए डाक्टर हसन ने दरवाजे की ओर देखा—"कौन है ?" और वहाँ निरसू खड़ा था।

"आओ निरसू काका !"—अचला बोल उठी। न जाने क्यों, इस अवसर पर निरसू को देखते ही अचला को लगा जैसे अब योगेन्द्र की बीमारी भाग खड़ी होगी।

"कहो निरसू ठाकुर, कैसी जिन्दगी कट रही है ?"—डाक्टर हसन ने स्वाभाविक मुस्कराहट से पूछा।

निरसू के कठोर चेहरे पर बच्चों की-सी हँसी खिल गई। बोला—"जिन्दगी मौत का पीछा कर रही है, रास्ता तेजी से कट रहा है।"

निरसू का उत्तर सुनकर अचला और डाक्टर हसन मुस्करा उठे। योगेन्द्र ने बहस की मुद्रा में पूछा—"किसका रास्ता तेजी से कट रहा है ?—आपका या संसार का या देश का ?"

निरसू ने हँसकर जवाब दिया—"मेरा रास्ता कट रहा है जोगी बेटा ! मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ कि संसार या देश की बात सोचूँ।"

"आपको सोचना होगा। अलग-अलग खिचड़ी पकाने से बर्बादी के सिवा कुछ भी हाथ लगने को नहीं।"—योगेन्द्र ने गम्भीरता से कहा।

निरसू जैसे तैयार बैठा था। बोला—"सम्मिलित खिचड़ी दिल्ली में पक रही है बेटा, जिसकी खुशबू-भर देहातियों को मिल पाती है और तब भूख और बढ़ जाती है।"

"दिल्ली में सम्मिलित खिचड़ी नहीं पकती। वहाँ तो बेसुरे राग अलापे जा रहे हैं—अपनी-अपनी डफली—अपना-अपना राग। वहाँ

एक ही ईमानदार, दूरदर्शी और उदार पुरुष है, लेकिन वह भी शैतानों के अलंघ्य वृत्त में घिरा है। उसकी मदद के लिए आप क्या कर रहे हैं निरसू काका ? भारत के उस अमूल्य लाल को शैतानों के वृत्त से निकालना होगा।"

"अच्छा, अब सो जाओ ! कल सुबह बातें कीजियेगा।" डाक्टर हसन ने आदेश के स्वर में कहा।

योगेन्द्र चुप हो रहा। सब लोग खामोश हो गए। गाँव में पहरा पड़ने लगा, इक्के-दुक्के कुत्ते बोलने लगे और सघन अन्धकार के विशाल चंगुल में चेतना निस्पन्द हो गई।

योगेन्द्र के सो जाने पर डाक्टर हसन और निरसू ठाकुर बाहर बरामदे में आ खड़े हुए।

डाक्टर हसन ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा—"मेरी समझ में नहीं आता कि क्या किया जाये। गाँव वाले मुझ-से खार खाये बैठे हैं। सोचता हूँ कि गाँव छोड़कर चला जाऊँ। जब यहाँ वालों को मेरी आवश्यकता नहीं है, तब यहाँ रहने से क्या लाभ ? ··· लेकिन तब अचला का क्या होगा ? विपत्तियों से डरकर भागना मैंने सीखा नहीं।"

"जोगी उससे शादी क्यों नहीं कर लेता ?" निरसू ने रूखे स्वर से पूछा।

"वह समाज से डरता है। सोचता है, ऐसा करके वह एक अनुपयोगी वस्तु बनकर रह जायगा—अपने अस्तित्व की रक्षा में उसका जीवन समाप्त हो जायगा और ऐसा बनना वह नहीं चाहता।"

"तो उसे और उसके समाज को मरने दीजिए। आप अपनी सुविधा देखिए।"

"नहीं-नहीं, हर आदमी को अपने-अपने ढंग से सोचने-समझने का अधिकार है। और मेरी सुविधा का क्या ? मैं तो अपने जीवन को दूसरों की सुख-सुविधा का निमित्त-भर मानता हूँ।"

"ऐसा जीवन अच्छा नहीं होता डाक्टर साहब ! आपकी अच्छाई

दूसरों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करती है। मुझे पता चला है कि गाँव वाले आपके विरुद्ध कोई भयङ्कर षड्यन्त्र रच रहे हैं। आज शाम को कुछ लोग थाने में भी गए थे।"

डाक्टर हमन हँसकर चुप हो रहे। कुछ देर बाद बोले—"कल मैं जोगी जी से बात करूँगा। यदि अचला तैयार हो गई तो उसे लेकर कहीं बाहर चला जाऊँगा। ··· ··· अच्छा तुम जाओ निरसू !"

और निरसू नमस्कार करके अन्धकार में गायब हो गया।

× × ×

रघूबाबू के दालान पर गाँव के दस-ग्यारह आदमी चुप-चाप बैठे थे! सबकी नजरें नीचे जमीन की ओर झुकी थीं। केवल रघूबाबू सामने गाछी की ओर शून्य दृष्टि से देख रहे थे, लेकिन उनके चेहरे पर क्रोध, बेचैनी और ईर्ष्या के समन्वित भाव स्थिर हो रहे थे। नेताजी ने चुप्पी तोड़ते हुए कहा—"तब रघू भाई, क्या किया जाय?"

"मैं तुमसे ही पूछता हूँ,"—रघूबाबू ने तेज स्वर में कहा—"मेरे बेटे का सिर तो मुझसे बिना पूछे ही तोड़ डाला और मेरे पास क्या लेने आये हो?"

"वह तो गलती हो गई रघूभइया!"

"गलती हो गई? जिस पत्तल में खाते हो उसीमें छेद कर देते हो और कहते हो गलती हो गई। ऐसा कह देने से काम नहीं चलेगा।" रघूबाबू ने झमककर कहा और अपना चेहरा दूसरी ओर कर लिया।

"फिर आज्ञा दो—हम लोग क्या करें?"

"मैं कौन होता हूँ आज्ञा देने वाला? मैं तो तुम लोगों का नौकर हूँ कि जब जरूरत पड़ती है, चले आते हो और मेरे पसीने की कमाई ले भागते हो! लेकिन अब यह सब नहीं चलेगा। मैं कल ही तुम लोगों का बोरिया-बिस्तर नीलाम पर चढ़वा दूँगा।"

"रघू काका! अब तो जो होना था सो हो चुका। किसी गँवार साले ने जोगी भइया पर छिपकर हमला कर दिया। अगर हम लोग

उसे देख लेते तो वहीं उसकी गरदन टीप देते। लेकिन अब बताओ कि हम लोग क्या करें ?"—गाँव के एक दुबले-पतले बदसूरत आदमी ने कहा।

"क्या तुम्हें अक्ल नहीं है ? अन्धे हो ? सबकी नजरों के सामने एक परदेसी मुसलमान एक हिन्दू लड़की को घर में रखे है और तुम लोग हो कि अपने पर ही हमला कर बैठते हो। तुम लोगों को शर्म भी नहीं आती। जब हमारा धर्म ही मिट जायगा तब तुम्हारी जवानी किस काम आयगी ?"

"लेकिन जोगी जो बीच में आ खड़ा होता है!" गेताजी ने उपालम्भ के स्वर में कहा।

"इसमें जोगी से पूछने की क्या जरूरत है ? अभी वह बीमार पड़ा है। जितनी जल्दी हो सके उस लड़की का उद्धार कर लो और डाक्टर को ऐसी सजा दो कि ·····।"

"हम उसकी जान ले लेंगे।"—एक आदमी चीख उठा।

"बस, कल ही काम तमाम कर दो, वर्ना निरसू को मालूम हो जायगा तो सब किया-कराया चौपट हो जायगा।"—रघूबाबू ने दबे स्वर में अपने उल्लास को छिपाते हुए कहा।

× × ×

रात ढलने लगी थी। आकाश साफ था। जमीन पर अन्धकार काँप रहा था। सरोज चुप-चाप अपने बिस्तर से उठकर आँगन में आई। चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। उसके बाएँ हाथ वाली कोठरी से उसकी सास का खर्राटा सुनाई पड़ रहा था। उसने ध्यान से चारों ओर देखा, कान लगाकर कुछ सुनने का उपक्रम किया और फिर घर के पीछे का दरवाजा खोलकर बाहर हो गई। बाहर निकलते ही डर से उसकी देह का रोआँ काँटों-काँट हो गया। लेकिन न जाने कहाँ से साहस आ गया कि वह बहुत तेज रफ्तार से गाँव के बाहर जाने लगी। गाँव में भयानक खामोशी छाई हुई थी। किसी-किसी के

दरवाजे पर जानवर बँधे हुए थे, जो पता नहीं जग रहे थे या सो रहे थे। कहीं किसी की नाक बज रही थी, तो कहीं किसी का मुँह बज रहा था। सरोज लपकती हुई भागी जा रही थी। उसके हृदय में भय और साहस का द्वन्द्व हो रहा था और कभी-कभी कुछ खटका होने पर उसका कलेजा धक् रह जाता। गाँव से बाहर आने पर वह कुछ आश्वस्त हो उठी। हाँ, कभी-कभी किसी आशंका से पीछे मुड़कर देख लेती, लेकिन कहीं कुछ न होने पर आगे बढ़ जाती। अभी डाक्टर हसन का मकान कुछ दूर था कि दाहिने हाथ के खेत में गेंहूँ के छोटे-छोटे पौधे डोलते-से प्रतीत हुए। सरोज का कलेजा धक् से हो गया। ठण्ड से देह काँप रही थी—नाक से पानी बह रहा था, लेकिन भाल पर पसीना आ गया। उसने हिम्मत करके उस ओर देखा, लेकिन अन्धकार में उसे कुछ नजर नहीं आया। गेंहूँ के पौधे स्थिर थे, वह आगे बढ़ गई।

डाक्टर हसन के मकान पर पहुँचते ही उसने घबराहट में जल्दी-जल्दी दरवाजा पीटना शुरू किया। डाक्टर हसन कुछ ही देर पहले सोये थे। योगेन्द्र का बुखार उतरने पर वह लाइब्रेरी से वापस आ पाए थे। सो लगभग दो-तीन मिनट के बाद डाक्टर साहब की नींद टूटी। दरवाजा खोलते ही डाक्टर हसन चौंक उठे। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"आप ?"

सरोज उनकी ओर अपलक दृष्टि से देखती रह गई। बोली कुछ नहीं।

"भीतर आ जाइये !"—कहकर डाक्टर साहब स्वयं मुड़कर अपने बिस्तर की ओर चले आए। सरोज भी उनके पीछे-पीछे भीतर चली आई।

"क्यों ? खैरियत तो है ?"—डाक्टर हसन ने लालटेन की रोशनी में सरोज का पसीने से भीगा हुआ चेहरा देखकर गम्भीरता

से पूछा।

"आप सुबह होते-होते गाँव छोड़ दीजिये!"—सरोज का स्वर करुणा और वेदना की तीव्रता से अवरुद्ध हो रहा था।

"क्यों?"—डाक्टर हसन ने मुस्कराते हुए पूछा।

"गाँव वाले आपकी जान लेने पर उतारू हैं।"

"तो क्या हुआ?"

सरोज विस्फारित आँखों से डाक्टर हसन को देखने लगी, जैसे उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि सामने कोई आदमी बैठा है। वह खोई-खोई-सी बोली—"आपको अपनी जान की परवाह नहीं है?"

"मेरी जान को छोड़िये। आप यह बताइये कि इतनी रात में आपको मेरे घर तक आने की हिम्मत कैसे हुई?···यह आपने अच्छा नहीं किया।" डाक्टर हसन गंभीर हो उठे।

"आपने दो बार मेरी जान बचाई है। और मैं आपको अपनी जान आप बचाने के लिए सावधान करने भी नहीं आती?"

"मेरा तो पेशा है,मरीजों का इलाज करना। लेकिन आप किसी के घर की इज्जत हैं। इतनी रात को अकेली बाहर निकलना अच्छा नहीं है। मान लीजिए, रास्ते में किसी—खैर हटाइये इन बातों को। चलिये मैं आपको घर तक छोड़ आता हूँ।"

"लेकिन पहले आप वचन दीजिये कि कल इस गाँव को छोड़कर चले जाइयेगा।" सरोज ने करुणा मिश्रित-स्वर में कहा।

डाक्टर हसन मेज पर से सिगरेट उठाकर पीने लगे। गाँव में एक साथ दो कुत्ते बोल उठे—बोलते रहे, जैसे किसी पर झपट रहे हों।

"आज तक भागना नहीं सीखा है, और न भागूँगा। अगर गाँव वाले मेरी सेवा का पुरस्कार मेरी जान लेकर ही अदा करना चाहते हैं, तो शौक से करें।"

"लेकिन···।"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। मैं यह गाँव छोड़कर कहीं नहीं जा

सकता। शायद मेरी जान लेकर ही लोग अपने-अपने जीवन को पहचान सकें।"

सरोज के होंठ खुले थे, उसकी आँखें खुली थीं. उसके अंग-प्रत्यंग चेतन थे, लेकिन वह बिल्कुल खोई-खोई थी; दोनों चुप-चाप बैठे थे। डाक्टर हसन नीची नजर किये सिगरेट से उठते हुए धुएं की लकीरें देख रहे थे। कुछ देर बाद उन्होंने कुछ अजीब अनुराग भरे स्वर से पूछा—"आपको मेरी इतनी चिंता क्यों है।"

"....।"

"आपने मेरी जान की चिंता में अपनी जान पर खतरा ले लिया—ऐसा क्यों?"

सरोज फिर भी चुप रही।

डाक्टर हसन ने अपनी दृष्टि उठाकर देखा। सरोज उन्हें देख रही थी। पल-भर दोनों की आँखें मिलीं। सरोज ने सिर झुका लिया।

डाक्टर हसन एक लम्बी साँस खींचकर उठ खड़े हुए और बोले—मैं संसार में बिल्कुल अकेला आदमी हूँ। मेरे मरने के बाद मेरे लिए कोई रोने वाला भी नहीं है। इसलिए मुझे अपने मरने का कतई खौफ नहीं है। हाँ, आपने अपने शुद्ध स्नेह का जो परिचय दिया है, उसे मैं जीवन-भर याद रखूँगा और...।"

'और भी बहुत-सी चीजें याद रखेंगे।" रघूबाबू की कड़कती-काँपती आवाज से डाक्टर हसन की कोठरी थर्रा उठी। रघूबाबू के साथ रामबाबू और गाँव का एक और आदमी था। रघूबाबू चील की तरह झपटते हुए आये और अपने हाथ की बेंत की मोटी छड़ी बड़ी बेरहमी से सरोज की देह पर पटक दी। सरोज कुर्सी से नीचे लुढ़क गई, लेकिन रघूबाबू ने बेंत बरसाना जारी रखा। सरोज के आर्त्त-नाद से बाहर का अंधकार दहल उठा। लेकिन रघू बाबू के मन की कालिमा और गहरी होती गई।

डाक्टर हसन ने लपककर रघूबाबू का बेंत पकड़ लिया—"आप

मेरे घर में इन्हें नहीं पीट सकते। एक औरत पर हाथ उठाते आपका हाथ नहीं काँपता ?" डाक्टर हसन ने सरोष कहा।

रघूबाबू क्रोध से तिलमिला उठे। झटके से उन्होंने डाक्टर हसन के हाथ से बेंत खींच लिया और उसी बेंत से डाक्टर हसन को भी जहाँ पाया दनादन पीट दिया। डाक्टर हसन हक्के-बक्के होकर देखते रह गये। रघूबाबू चीख उठे—"मुँह क्या देख रहा है राम, खींचकर ले चल इस कुल-कलंकिनी को। घर चलकर इसकी जान ले लूँगा।"

रामबाबू ऐसी परिस्थिति के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे, अचानक होश में आ गए और उनका हिन्दू-संस्कार जागृत हो उठा। वह क्रोध से काँपते हुए सरोज के पास पहुँचे। बेंत की मार से सरोज अर्ध-मूर्च्छित हो रही थी, कई जगह से उसकी देह फूट गई थी, खून बह रहा था। रामबाबू ने उस गाँव वाले की सहायता से सरोज को घसीटना शुरू किया। रघूबाबू ने खूनी आँखों से डाक्टर हसन को देखा और चल दिए। डाक्टर हसन चुपचाप बेबस आँखों से सरोज का घसीटा जाना देख रहे थे। उनके चेहरे पर मृत्यु की स्थिरता छा रही थी। उनके होठों पर अजीब मुस्कराहट काँप रही थी—ऐसी मुस्कराहट, जिसे देखकर मौत भी काँप उठे; और उनकी आँखों में करुणा, पीड़ा और सहानुभूति की बाढ़ उमड़ रही थी। उनके सामने का दरवाजा खुला हुआ था, उसके बाहर काला घुप्प अन्धकार जमा था, लेकिन डाक्टर हसन स्पष्ट रूप से सरोज की दुर्दशा देख रहे थे····· तीन दानव एक सुकुमार अबला को मारते-पीटते, गाली देते, घसीटते लिये जा रहे थे···सरोज मूर्च्छित हो रही थी·····उसकी देह से खून बह रहा था·····उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे···उसकी देह जमीन में घिसटती-ठोकर खाती दूर होती जा रही थी, आँखों से दूर···बहुत दूर, अन्धकार में··· डाक्टर हसन का हृदय फटता जा रहा था···और वही सरोज पास आती जा रही थी··· खूबसूरत··· मासूम···निर्मल···और तब डाक्टर हसन की आँखें बन्द हो गईं।

बन्द पलकों से आँसू की दो-तीन बूँदें ढुलक पड़ीं···शायद जीवन में पहली बार !

: २३ :

और दिनों की बनिस्बत आज देर तक कुहरा छाया रहा। डाक्टर हसन बिस्तर से उठे। उनकी देह में कई जगह दर्द हो रहा था। रात-भर वह सो नहीं पाये थे। बहुत देर तक वह खिड़की के पास खड़े रहे। उनका मस्तिष्क बिल्कुल सूना हो रहा था। विचारों और घटनाओं के तूफान ने उन्हें संज्ञा-हीन बना दिया था। वह एकटक किसी वस्तु को निरुद्देश्य देखते रह जाते। आस-पास के पेड़-पौधे ओस से भीगे हुए थे और दूर पर चारों ओर कुहरा छाया था—एक सफेद-सफेद, झीना-झीना पर्दा चारों ओर लटक रहा था। बहुत देर तक डाक्टर हसन यों ही जड़वत् खड़े रहे। अचानक ही अचला की आवाज सुनकर वह जैसे नींद से जाग उठे। वह कह रही थी—"अब तक आपने चाय नहीं पी ?"

डाक्टर हसन ने घूमकर अचला को देखा। डाक्टर हसन का चेहरा देखते ही वह स्तम्भित रह गई। उनकी बाँई कनपट्टी के पास खून जमा हुआ था, चेहरा सूज आया था, आँखें लाल हो रही थीं, चेहरा स्थिर था, उनके होठों की सहज मुस्कान कहीं खो गई थी और उसकी जगह सटे हुए होंठ किसी भयंकर भाव को अभिव्यक्त कर रहे थे।

"क्या हो गया आपको ?"—अचला ने सहमते हुए पूछा।

"कुछ नहीं। चाय बनाओ !"—डाक्टर हसन ने उसी मुद्रा में रूखे स्वर से कहा।

अचला चाय बनाकर ले आई। डाक्टर हसन कुर्सी पर बैठे थे—

बुत की तरह। अचला ने चाय बनाते हुए कहा—"बहुत ही दुखद समाचार है।"

डाक्टर हसन ने कोई जिज्ञासा नहीं प्रकट की। अचला ने रुक-रुककर कहा—"रात सरोज दीदी·····का···देहांत हो गया!"

डाक्टर हसन चुप रहे। उसी मुद्रा में बैठे रहे। अचला कहती गई—"लोग उन्हें श्मशान ले गए हैं।"

और डाक्टर हसन अचानक ही उठ खड़े हुए। उनकी आँखें बन्द हो गईं। दाँत गुँथ गए। अचला कुछ भी नहीं समझ सकी। डरी-डरी-सी बैठी ताकती रही।

"डाक्टर साहब!" बाहर से कोई पुकार उठा!

अचला उठकर दरवाजे तक गई और वापस आकर बोली—"मरीज लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन लोगों से कह दूँ कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है?"

"नहीं, मैं ठीक हूँ। जरा नहा-धोकर अभी आता हूँ।" और बिना चाय पिये आँगन में चले गए। अचला चुपचाप चाय का सामान धो-धाकर लाइब्रेरी की ओर भागी।

अन्य दिनों की तरह डाक्टर हसन ने लोगों को दवा दी। लेकिन सबोंने देखा कि डाक्टर साहब के हाव-भाव, चेहरा, बात-व्यवहार बदले हुए हैं। मरीजों का हाल सुनकर वह चुपचाप दवा दे देते। और इस तरह येन-केन-प्रकारेण एक बज गया।

डाक्टर हसन अपनी कोठरी में आये। वहाँ एक कुर्सी पर अचला बैठी हुई थी और नीचे बिस्तर लगाकर योगेन्द्र पड़ा था।

"कैसी तबियत है?"—डक्टर हसन ने अनासक्त भाव से योगेन्द्र की ओर देखते हुए पूछा।

"अच्छी है।"

"अभी आप बहुत कमोजर हैं। यहाँ क्यों चले आए?"—डाक्टर हसन ने अपने बिस्तर पर बैठते हुए पूछा।

"सुना, आपकी तबीयत खराब है। इसीलिए चला आया।"

"किसने कहा ?"

"गाँव के कई लोग मुझे देखने आये थे। उन लोगों ने भी कहा और अचला ने कहा।"

"गलत बात। मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"—डाक्टर हसन ने स्वगत-भाषण के ढंग से कहा और वह खिड़की के पास जा खड़े हुए। खेत में धूप फैली थी, पेड़ के पत्तों पर ओस-कण सूख चुके थे, मौसम कुछ फीका-फीका-सा—उजाड़-सा लग रहा था। योगेन्द्र ने महसूस किया, डाक्टर हसन के मन में कुछ भेद है, द्वन्द्व है, रहस्य है। तीनों चुपचाप थे। कोठरी की घड़ी टिक्-टिक् किये जा रही थी।

"खाना यहीं ले आऊँ ?"—अचला ने संशय भाव से पूछा।

डाक्टर हसन मुड़े, कुछ क्षण अचला और योगेन्द्र को देखते रहे; और फिर बोले—"आप लोग अब विवाह-बन्धन में बँध जाते तो अच्छा रहता।"

"मैं···मैं पूछती हूँ, खाना यहीं ले आऊँ ?" अचला ने अपना प्रश्न दुहरा दिया।

डाक्टर हसन के होठों में अनुभूतिपूर्ण मुस्कराहट स्थिर हो गई।

"मुझे भूख नहीं है। आप लोग खा लीजिए !"—डाक्टर हसन ने कहा। अचला और योगेन्द्र एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। पूरी कोठरी में रहस्य और मनहूसी छा रही थी। अजीब मौसम था, अजीब समाँ था।

दिन ढल रहा था। डाक्टर हसन अपने बिस्तर पर सिरहाने के सहारे ओठँगकर बैठे थे। योगेन्द्र वहीं बगल में खाट पर सो रहा था और अचला कुर्सी पर बैठी कोई पत्रिका देख रही थी। डाक्टर हसन ने कान लगाकर कुछ सुनने का प्रयास किया—बाहर कुछ शोर-गुल हो रहा था, जो धीरे-धीरे निकट आता जा रहा था। अचला ने पत्रिका बन्द कर दी और कौतूहल से डाक्टर हसन का मुँह ताकने

लगी।

शोर-गुल निकट आता जा रहा था—निकट आता जा रहा था और डाक्टर हसन के मुख-मंडल पर सहज स्निग्धता खिलती जा रही थी, उनके होठों पर स्वाभाविक मुस्कराहट थिरकती आ रही थी। अचला का मन विस्मय से आकुल-व्याकुल होता जा रहा था।

"यह कैसा शोर-गुल है ?"—अचला ने शंकित होकर पूछा।

"शोर मत कीजिए। जोगी जी जग जायँगे।"—कहकर डाक्टर हसन इतमीनान से उठ खड़े हुए और हँसते हुए बोले—"आज मेरी ईमानदारी, सेवा और उदारता का पुरस्कार मिलने वाला है। आप यहीं रहिये, बाहर मत निकलियेगा।"

और वह धीरे-धीरे चलते हुए कोठरी के बाहर बरामदे पर जाकर खड़े हो गए। उनके दोनों हाथ बंडी की जेबों में पड़े थे। लगभग सौ-सवा सौ आदमियों की भीड़ उनके दरवाजे पर खड़ी थी।

डाक्टर हसन को देखते ही सब लोग सहसा चुप हो रहे कि पीछे से एक तेज आवाज सुनाई पड़ी—"अचला को हम लोगों के हवाले करो!"

"अचला को आपके हवाले करने वाला मैं कौन होता हूँ ?"—डाक्टर हसन ने शान्त भाव से कहा।

इसी समय भीड़ को चीरते हुए रघूबाबू सामने आ खड़े हुए और बोले—"हम हिन्दुओं का धर्म बिगाड़ने वाले तुम कौन होते हो ?"

"मैं न तो किसी धर्म को मानता हूँ, न किसी से मानने को कहता हूँ। और न मैं धर्म बनाता हूँ, न बिगाड़ता हूँ।"

"यह सब बकवास बन्द करो और अचला को घर के बाहर निकालो," नेताजी चीख उठे।

"अचला को मैंने बाहर आने से रोक रखा है। वह बाहर नहीं निकलेगी।" डाक्टर हसन ने निर्भीक स्वर में कहा।

"तो हम लोग तुम सबोंको जिन्दा जला देंगे।"—रघूबाबू ने

काँपते हुए कहा।

साथ ही भीड़ भी चिल्ला उठी—"हाँ-हाँ, मार दो साले को।" और हू-हा के क्रम में ही रोड़े-पत्थर चलने लगे!

उसी समय योगेन्द्र कोठरी से बाहर आया, उसके पीछे अचला खड़ी थी।

"एक देवता पर रोड़े बरसाते और उसे गाली देते आप लोगों को शर्म नहीं आती?"—योगेन्द्र अपनी कमजोर आवाज में चीख उठा।

"कौन देवता है?—यह डाक्टर? हुँ-ह·····मूर्ख, दिमाग खराब हो गया है इसका। इसे पकड़कर इधर ले आओ!"—रघूबाबू के इतना कहते ही तीन-चार आदमी लपककर योगेन्द्र को उठा ले गए। अचला तब तक डरकर कोठरी में भाग गई और उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। भीड़ पागल हो रही थी। लोग डाक्टर हसन को भूल गए और अचला को पकड़ने के लिए दरवाजा तोड़ने लगे।

ठीक इसी समय, न जाने कहाँ से, निरसू उछलकर वहाँ आ पहुँचा। उसके कंधे पर दोनाली बन्दूक लटक रही थी। एक ही धक्के में उसने आठ-दस आदमियों को दरवाजे पर से नीचे धकेल दिया। उसे देखते ही भीड़ में खलबली मच गई।

लोग सहमकर इधर-उधर फैलने लगे कि रघूबाबू गरज उठे—"तुम लोगों ने अपनी-अपनी माँ का दूध नहीं पिया है? चुल्लू-भर पानी में डूब मरो। अरे अभागो, यदि हिम्मत ही नहीं थी तो··· धर्म की रक्षा के लिए प्राण तक दे देने की शपथ क्यों ली थी? तुम लोग अपनी जवानी सहेजकर रखो, लेकिन मैं बूढ़ा होते हुए भी अकेला यहाँ डटा रहूँगा!" रघूबाबू की इस ललकार पर लोग फिर जोश में आ गए।

निरसू ने अपनी बन्दूक सँभाल ली। लोग हिचककर रुक गए। कि निरसू बोल उठा—"रुक क्यों गये? आगे बढ़ो!"—और एक क्रूर

निशानेबाज की तरह उसने दो गोलियाँ चला दीं। दो लाशें एक साथ तड़प उठीं। भीड़ में हाहाकार मच गया। निरसू ने जल्दी से फिर अपनी बन्दूक भर ली कि उसी समय डाक्टर हसन ने लपककर निरसू की बन्दूक पकड़ ली।

क्रोध से डाक्टर हसन का चेहरा तमतमा रहा था। वह बोल उठे—"तुम्हारे कर्म पर मुझे शर्म आती है निरसू। तुम यहाँ से अभी चले जाओ!"·····अभी डाक्टर हसन कुछ और कहना चाहते थे कि एक चमकता हुआ भाला डाक्टर हसन की कनपटी को छीलता हुआ दीवार से जा टकराया! और उसके साथ ही ईंट, लाठी, भाले बरसने लगे। निरसू क्रोध से पागल हो उठा। उसने उन्मादी की तरह एक झटके से डाक्टर हसन को गिरा दिया और बन्दूक का निशाना साधकर गोलियाँ दाग दीं- "धाँय·····धाँय!" और वह फिर गोली भरने ही जा रहा था कि सामने का दृश्य देखकर चौंक उठा! डाक्टर हसन खून में लथपथ तड़प रहे थे। किसी भयंकर आघात से निरसू का मस्तिष्क झनझना उठा। भीड़ ने भी डाक्टर हसन की लाश को देखा और एक अनजान ग्लानि से भीड़ काँप उठी। सबोंके चेहरे पर कौतूहल-मिश्रित ग्लानि झलक उठी। सभी डरे-सहमे खड़े रहे! लेकिन किसी की समझ में नहीं आया कि डाक्टर हसन को गोली कैसे लगी। बन्दूक की आवाज सुनते ही अचला दरवाजा खोलकर बाहर आ गई थी और निरसू को देखते ही हिम्मत से भर उठी। उसने डाक्टर हसन का जो खून देखा तो दौड़कर डाक्टर हसन के पास पहुँची। उसके क्रन्दन से भीड़ की खामोशी दहल उठी। डाक्टर हसन शान्त पड़े थे।

निरसू ठाकुर ने देखा, दूर पर सशस्त्र पुलिस के साथ दारोगाजी दौड़ते चले आ रहे हैं। लेकिन उसने भागने की कोशिश नहीं की। वह चुपचाप खड़ा रहा। दारोगाजी आये, लेकिन अपने दल के साथ कुछ दूर पर ही रुक गए। निरसू कुछ देर तक उन लोगों को देखता रहा; उसके चेहरे पर न भय था न विषाद; उसकी आँखों में न आँसू

थे, न होठों पर मुस्कराहट ! उसने अपने हाथ की बन्दूक जमीन पर फेंक दी और दोनों हाथ जोड़कर डाक्टर हसन के निष्प्राण शरीर को प्रणाम किया और उसके बाद अपने दोनों हाथ दारोगा की ओर बढ़ा दिए।

निरसू को हथकड़ी डालकर दारोगा आश्वस्त हुआ। वह लाल-लाल आँखें किये डाक्टर हसन की लाश के पास पहुँचा। वहाँ अचला को देखकर वह शैतान की तरह गरज उठा—"जमादार साहब, इस लौंडिया को थाने ले चलिए ! इसीके कारण यह सब खून-खराबी हुई है।"

"उस लड़की ने क्या कसूर किया है ? खबरदार जो उसे हाथ लगाया।' 'निरसू चीख उठा।

दारोगा ने थोड़ी नरमी से कहा—"अब इसे किसके आश्रय में छोड़ा जा सकता है ? या तो यह अपने घर चली जाय, या थाने चले। वहाँ चलकर कुछ प्रबन्ध किया जायगा।"

"अचला चुपचाप उठ खड़ी हुई। आँसू से उसकी आँखें गीली और बड़ी हो गई थीं, उसका मुख-मण्डल लाल हो रहा था। उसने एक बार योगेन्द्र की ओर देखा और सिर झुकाकर दारोगा की ओर बढ़ चली कि योगेन्द्र चीख उठा—"ठहरो !" और लपककर अचला के सामने खड़ा हो गया। दोनों की नजरें मिलीं। योगेन्द्र ने अनुराग से अचला को देखा। सब लोग अवाक् थे।

योगेन्द्र ने दृढ़ स्वर में दारोगा से कहा—"यह मेरी पत्नी है !"

"जोगी !" रघूबाबू चीख उठे।

"हाँ बाबूजी, मैं आज तक कायर बना रहा और अपनी जिम्मेवारी डाक्टर साहब के कंधों पर डाले रहा, जिसका भयंकर परिणाम यह हुआ। डाक्टर साहब शरणागत-वत्सल थे। मेरे कारण ही वह आप लोगों का अपमान और बदनामी सहते रहे।"

"लेकिन यह शादी नहीं हो सकती।" रघूबाबू लपककर पास

आते हुए बोले।

योगेन्द्र ने शान्त स्वर में कहा—"क्या अभी तक आपका कलेजा ठंडा नहीं हुआ है ? तीन निर्दोष प्राण तो आप ले चुके। अब और क्या चाहते हैं ? बाबूजी, कभी-कभी भूल से भी आदमी बनकर आदमी को देख लिया कीजिये। दुनिया में बहुत-सी बातें सोचने-समझने और करने को पड़ी हैं। जाति और धर्म की बातें बहुत पुरानी पड़ चुकीं। हम मनुष्य जाति के हैं। यदि इतनी-सी बात मान लें तो बहुत-सी समस्याएँ अपने-आप हल हो जायँगी।·····अचला, बाबूजी के पैर छूओ !"

अचला रघूबाबू के पैर छूने को बढ़ी कि रघूबाबू जैसे घबरा-से गए। बोल उठे—'नहीं-नहीं, अलग रहो !"···लड़खड़ाते, गिरते-पड़ते, वह भीड़ को चीरते हुए गाँव की ओर भागे। न जाने क्यों, अनजाने ही भीड़ में से बहुत-से लोग उनके इस ढंग पर हँस पड़े।

योगेन्द्र ने देखा, बाबूजी अकेले ही भागे चले जा रहे थे, उनके साथ कोई भी नहीं था ! पश्चिम का सूर्य बिल्कुल लाल हो रहा था, अनुरागमयी संध्या की माया गाँव पर घिरती आ रही थी। डाक्टर हसन की लाश की पुलिस रखवाली कर रही थी।·····वहीं पर दो लाशें और पड़ी थीं। और कुछ दूर पर गाँव के बीस-पच्चीस आदमी घूरा जलाये आग ताप रहे थे। और सबोंका ध्यान पुलिस के सिपाहियों की ओर लगा था। पुलिस वाले निष्काम भाव से बरामदे पर बैठे थे···निष्क्रिय होकर, अपनी व्यवस्था के ज्वलन्त उदाहरण की तरह, जैसे जीवितों की नहीं, मृत की रक्षा करना ही उनका परम कर्तव्य हो।

·····और पश्चिम में सूर्य डूब गया। सूरज की प्रतीक्षा में अंधकार जमीन पर उतर आया।